सत्य-ग्रंथ-माला, संख्या ८

मेरी कैलाश-यात्रा

सत्यदेव

हिमालय पर चढ़िए

मानसरोवर-स्नान कीजिए

तिब्बतियों की बातें सुनिए

राजहंसों को देखिए

मेरी कैलाश-यात्रा

लेखक और प्रकाशक

स्वामी सत्यदेव परिव्राजक

रचयिता

"शिक्षा का आदर्श," "अमरीका-भ्रमण," "सत्य-निबन्धावली," "मनुष्य के अधिकार", "राजर्षि भीष्म", "अमरीका-पथ-प्रदर्शक," और "अमरीका-दिग्दर्शन" इत्यादि

पं० ओङ्कारनाथ वाजपेयी के प्रबन्ध से ओंकार प्रेस, प्रयाग में छपी।

संवत् १९७२

प्रथम बार ४०००

यह पुस्तक सत्य-ग्रन्थ-माला आफिस प्रयाग से मिल सकती है।

मूल्य आठ आने

समर्पण

—:o:—

श्री कैलाशजी के कठिन धाम की यात्रा
करने में जिन सहृदय प्रेमी सज्जनों
ने मेरी सहायता की है उनके
करकमलों में यह ग्रन्थ
सादर समर्पित
करता हूं।

सत्यदेव

पुस्तक-परिचय

भारत की शिक्षा-प्रणाली ऐसी भद्दी है कि हम दस दस बारह बारह वर्ष स्कूल कालेजों में पढ़ चुकने पर भी अपने प्यारे देश तथा उसके पड़ोसियों के विषय में कुछ नहीं जानते। तिब्बत, जहां किसी काल में भारतीय सभ्यता ज़ोरों पर थी और जहाँ हमारे पुनीत तीर्थ स्थान हैं, इस समय हमारे लिये रहस्य पूर्ण देश हो गया है। संसार के पर्वत शिरोमणि हिमालय के विषय में हमें कुछ भी ज्ञान नहीं यद्यपि हम उसकी प्रशंसा के गीत नित्य गाया करते हैं।

मेरी बहुत वर्षों से हिमालय लांघने की इच्छा थी किन्तु अमरीका जाने की धुन ने उसे दबाए रक्खा। जिन दिनों मैं अमरीका में था उस समय एक प्रसिद्ध योरपीय वैज्ञानिक की तिब्बत-अन्वेषण सम्बन्धी सचित्र लेखमाला—"दी सेञ्चरी" नामक मासिक पत्रिका में निकली थी। उसलेखमाला में "श्री-कैलाश" तथा "मानसरोवर" का सचित्र वर्णन पढ़ मेरी पुरानी इच्छा बलवती हो उठी। मैंने प्रण किया कि भारत जा कर अपने तिब्बत-स्थित जगत प्रसिद्ध तीर्थों की यात्रा करूंगा।

१४ जून १९१५ को रात के दो बजे किसी दैवी शक्ति ने मुझे मेरे पुराने सङ्कल्प का स्मरण दिला कर मुझे तिब्बत जाने की प्रेरणा की। मैंने उसकी आज्ञा को शिरोधार्य किया और १६ जून बुद्धवार को अपने कठिन व्रतपालनार्थ अल्मोड़ा से तिब्बत की ओर चल पड़ा।

उसी तीर्थ-यात्रा का वर्णन इस पुस्तक में है। यह पुस्तक एक उच्च उद्देश्य को सामने रखकर लिखी गई है। आजकल के भयानक समय में कोई भारतपुत्र अपने हृदयङ्गम भावों को सत्य और स्पष्ट लिख ही कैसे सकता है। कुछ ही हो ईश्वरीय इच्छा के सामने मनुष्य बेचारा क्या वस्तु है। परमात्मा ने भारतोत्थान का दृढ़ निश्चय कर अपने विद्युत्प्रवाह का सम्बन्ध हिमालय की गगनारोही चोटिओं के साथ कर लिया है। वहां उस बेतार तार के ऊंचे स्तूप गड़े हैं। इस मेरी "कैलाश-यात्रा" के द्वारा मैंने भारत-सन्तान को उन स्तूपों तक पहुंचाने की चेष्टा की है ताकि दैवी सन्देश की तरंगे उनके अन्दर प्रवेश कर सकें। मैंने यह सब उसी परब्रह्म की आज्ञा से किया है। जो कुछ त्रुटियां लेखन शैली में रह गई हैं वे दूसरे संस्करण में ठीक कर दी जायँगी।

प्यारे पाठक! यह पुस्तक मेरी इच्छानुकूल नहीं छपी। इसमें कई एक दोष रह गये हैं। आशा है कि आप उन दोषों की ओर ध्यान न देकर इसके उद्देश्य की ओर ही दृष्टि रक्खेंगे।

प्रयाग
फाल्गुन कृष्णपक्ष
१९७२

विनीत—
सत्यदेव परिव्राजक

सूचीपत्र

भूल संशोधन

१—पुस्तकारम्भ में भूल से पुस्तक का नाम—

"मेरी मानसरोवर-यात्रा"

ऐसा छप गया है, कृपया उसको—

"मेरी कैलाश-यात्रा"

ऐसा शुद्ध कर लीजिए।

२—पुस्तक में जहां जहां 'भुटिए' शब्द का व्यवहार किया गया है वह अशुद्ध है, उसे आप 'भोटिए' अर्थात् 'भोट के निवासी' ऐसा शुद्ध कर पढ़िए।

मेरी मानसरोवर-यात्रा।

प्रथम खण्ड

प्रारम्भिक बातें

हमारे दो बड़े प्रसिद्ध तीर्थ, श्री कैलाश और मानसरोवर, पश्चिमी तिब्बत में हैं। भारतवर्ष के नकशे को उठाकर देखो-- उत्तर में हिमालय लांघकर कश्मीर से आसाम तक एक लम्बा देश फैला हुआ है। यही तिब्बत है। यही है जिसको Mysterious Thibet रहस्यपूर्ण तिब्बत कहते हैं। यद्यपि हमारे पवित्र तीर्थों का वहां होना इस बात का पूर्णतया द्योतक है कि किसी काल में हिन्दू प्रभुता वहाँ पर थी, और हमारे बौद्ध भिक्षु, बराबर वहां जाकर धर्मोपदेश किया करते थे। पर इन सब बातों को युग बीत गये। आज तिब्बत सचमुच रहस्यों से पूर्ण है; आज शिक्षित संसार को उसके विषय में बहुत कम मालूम है।

अच्छा, नकशा उठाकर देखिये। भारत के कौन कौन से प्रान्त तिब्बत को छूते हैं,—कश्मीर, कांगड़ा, रामपुर बशहर, गढ़वाल, अल्मोड़ा, नेपाल, शिकिम, भूटान और आसाम— ये नौ प्रान्त ऐसे हैं जिनका तिब्बत से सीधा सम्बन्ध है। इनमें से नेपाल, शिकिम और भूटान, ये तीन तो ऐसी रिया-

सते हैं जिनके विषय में हमारे स्कूलों में कुछ भी पढ़ाया नहीं जाता और हम अपने इन भारतीय अङ्गों के विषय में बहुत कम जान सकते हैं। आसाम अति वन्य है। यहां से जो मार्ग तिब्बत को जाता है वह ब्रह्मपुत्र नदी की घाटी द्वारा जाता होगा, और ब्रह्मपुत्र के मार्ग के विषय में संसार के विद्वानों ने अभी कुछ भी नहीं जाना। बाकी जो भाग तिब्बत का है वह पश्चिमी तिब्बत हमारे बाकी पांच प्रदेशों को छूता है। उधर से जिन घाटों द्वारा हमारे व्यापारी तिब्बतियों से तिजारत करते हैं उनके नाम धाम नीचे लिखे जाते हैं:—

पहिला मार्ग—श्रीनगर (कश्मीर) से सिन्धु नदी की घाटी के रास्ते से होकर गरतोक जाता है। गरतोक तिब्बत में व्यापारी मंडी का स्थान है। श्रीनगर तथा लद्दाख़ से व्यापारी लोग इसी रास्ते तिब्बत जाते हैं।

दूसरा—कांगड़ा (पंजाब) ज़िले के लोग लाहौल होकर दमचोक के घाटे से रुदोक जाते हैं।

तीसरा—कल्लु के व्यापारी सपिती होकर शंगरंग घाटे से तिब्बत जाते हैं।

चौथा—रामपुर बशहर तथा शिमले के लोग शिपकी और सिरंग घाटों से तिब्बत पहुंचते हैं। शिपकी १५४०० फ़ीट और शिरंग १६४०० फ़ीट की ऊंचाई के घाटे हैं।

पांचवां—मसूरी (देहरादून) से एक रास्ता टिहरी होकर गंगोत्री की ख़बर लेता हुआ लिलांग घाटा पार कर तिब्बत ले जाता है। श्री गंगाजी के दृश्य इधर खूब देखने में आते हैं।

छठा—गढ़वालवाले माना (१७८९० फ़ीट) और नेती

(१६६२८ फीट) इन दो घाटों द्वारा अपना माल तिब्बत ले जाते हैं। इनके बीच में कमेट नामी चोटी २५४४३ फ़ीट ऊंची आकाश से बातें करती है। मानावाला रास्ता श्री केदारनाथ जी के पास से गुजरता है और नेतीवाला रास्ता श्री बद्रीनाथ होकर दावा [तिब्बत] जाता है। मैदान से जानेवाले बन्धु कोटद्वार तक रेल में जाकर आगे इस मार्ग को पकड़ सकते हैं; या ऋषिकेश होकर लछमणझूले से बद्रीनारायणजी वाली सड़क द्वारा जा सकते हैं।

सातवां—जोहार(अल्मोड़ा) वाले मीलम से चलते हैं। सामने हिमालय की तीन ऊंची दीवारे हैं। पहली ऊंटाधुरा की १७५९० फीट ऊंची दीवार है; दूसरी जंती की १७००० फीट ऊंची है; तीसरा सबसे कठिन कुंरी बिङ्गरी का घाटा (दर्रा) है जो १८३०० फ़ीटऊंचा है। इन तीनों बर्फ़ानी पहाड़ों को पारकर तिब्बत पहुंचते हैं। मैं इसी बिकट मार्ग से गया था। श्री कैलाश जी की सीधी परिक्रमा का यही मार्ग है।

आठवां—दारमा (अल्मोड़ा) के लोगों का रास्ता दारमा घाटा होकर जाता है। ये लोग भी ग्यानिमा मण्डी (तिब्बत) जाते हैं)

नवां—ब्याना (अल्मोड़ा) केलोग लंकपीलेख नामी घाटे से ग्यानिमा पहुंचते हैं।

दसवां—चौन्दास (अल्मोड़ा)निवासी लीपूघाटे से (१६७८० फ़ीट) तकलाकोट तिब्बती मण्डी में पहुंचते हैं। मैं इसी रास्ते से वापिस आया था। यात्री कैलाश जी से इसी रास्ते लौटते हैं।

उपरोक्त दस घाटों में से हमारा सम्बन्ध केवल अल्मोड़ा

ज़िले के उन दो घाटों से है जिनका कैलाश और मानसरोवर के मार्ग के साथ सम्बन्ध है।

पहिला घाटा कुंगरीबिङ्गरी का जोहार होकर जाता है। कैलाश जी जाने का यह मार्ग है; दूसरा है व्यास चौन्दास के रास्ते से लीपूधुरा का मार्ग। इधर से यात्री कैलाश जी से लौटकर भारत आते हैं। यों तो अन्य मार्गों से भी कैलाश दर्शन हो सकता है किन्तु पुरानी प्रथानुसार ठीक परिक्रमा जोहार होकर जाने और व्यास होकर लौटने में ही समझी जाती है।

इसलिये अपनी यात्रा की कथा आरंभ करने से पूर्व मुझे अपने अल्मोड़ा से अपरिचित पाठकों को अल्मोड़ातक पहुंचने के रेल मार्गों का बतादेना असंगत न होगा।

१—दक्षिण और पूरब से आने वाले देशबन्धु अवधरुहेल-खण्ड रेलवे के बरेली जंकशन से रुहेलखण्ड कमाऊं रेलवे लाइन द्वारा [छोटी लायन] हलद्वानी या काठगोदाम पहुंच कर अल्मोड़ा पहाड़ का रास्ता पकड़ सकते हैं; या लखनऊ सिटी स्टेशन से गाड़ी में बैठकर सीतापुर होते हुये, भोजीपुरा से गाड़ी बदल कर, काठगोदाम पहुंच सकते हैं।

२—पश्चिम से आनेवालों को मुरादाबाद स्टेशन से छोटी लायन द्वारा काशीपुर होकर रामनगर पहुंचने का सुभीता है। रामनगर पहाड़ की तराई में आखिरी स्टेशन है। यहां से अल्मोड़ा शहर पचास या बावन मील होगा।

३—जो यात्री अल्मोड़ा शहर नहीं देखना चाहते वे पीलीभीत से सीधे तनकपुर पहुंचकर पिठौरागढ़ होते हुये अस-कोट जायें। असकोट से जौहार होकर कैलाश जी को सड़क जाती है।

मैंने चूंकि अपनी यात्रा का आरंभ अल्मोड़े से किया था इसलिये मैं काठगुदाम के रास्ते को सामने रखकर अपनी यात्रा का वर्णन करता हूं। पाठक ध्यान पूर्वक पढ़ें।

काठगोदाम से अल्मोड़ा

बरेलीशहर स्टेशन से काठ गोदाम आनेवाली दो ट्रेनें-एक सवेरे सात बजे और दूसरी रात के दस ग्यारह बजे-छूटती हैं। पहली दिन के १२ बजे के करीब काठगोदाम पहुंचा देती है और दूसरी सवेरे पांच बजे के करीब। गरीब यात्रियों को बरेली से हलद्वानी का टिकट लेना चाहिए। हलद्वानी से घोड़े सस्ते मिल जाते हैं और श्रीरामचन्द्रजी के मन्दिर में ठहरने का भी सुभीता है। यह मन्दिर स्टेशन के बिलकुल पास ही है। हलद्वानी से काठगोदाम केवल पांच चार मील ही रहजाता है और हलद्वानी आने में रेल के किराए में भी किफ़ायत पड़ जाती है। हां जो अमीर यात्री हैं, जिनको डांडी या अच्छा घोड़ा दरकार है वे काठगोदाम ही जाकर उतरें; उनको वहां सुभीता रहेगा। जो मस्तराम हैं और पैदल घूमते हैं वे भी हलद्वानी ही उतरें तो अच्छा है।

काठ गोदाम में कभी कभी हुर्दङ्गे लोग यात्रियों को ठगने-वाले मिल जाते हैं। सुस्त और मरा हुआ घोड़ा किसी प्रकार इधर उधर दौड़ाकर भोले यात्री के गले मढ़ देते हैं। उनसे बचना चाहिये। घोड़ेवाले से पहले फ़ैसला करलेना उचित है कि चुङ्गी कौन देगा। अलमोड़ा शहर में सवारी घोड़ा ले जाने की एक रुपया चुङ्गी लगती है और लदू असबाबी घोड़े पर दोआने। यदि किसी 'भलेमानस' को चुङ्गीवाले की दक्षिणा देनी मञ्जूर न हो तो घोड़े को शहर से डेढ़ दो मील इधर

ही छोड़ देना उचित है। असल में सब से अच्छा पैदल चलना है। जिसको पहाड़ का आनन्द लेना हो उसे केवल असबाब के लिये कुली कर लेना चाहिए। काठगोदाम से अल्मोड़ा तक दो अढ़ाई रुपये में कुली होजाता है। बोझ कुली को दे आप मज़े मज़े पैदल चलिये, तभी पहाड़ की यात्रा का सुख मिल सकता है।

काठगोदाम से अल्मोड़ा ३७ मील है। रेलवे स्टेशन से दो मील चलकर पहाड़ की चढ़ाई आरम्भ होजाती है। १३ मील की चढ़ाई है इसके बाद उतार शुरू होजाता है। चार मील का उतार है। काठ गोदाम से चला हुआ यात्री भीम-ताल होता हुआ शाम को रामगढ़ पहुंच सकता है। भीम-ताल काठ गोदाम से आठ मील पर है। यहां पर ठहर कर भोजनार्थ जलपान करलेना चाहिए। यहां खाने पीने की चीज़ें सब मिलती हैं। अच्छा रमणीक स्थान है। रामगढ़ में भी दुकानें हैं; सब खाद्य वस्तु बिकती हैं। रामगढ़ में रात को ठहरने के लिए दुकानदारों के पास प्रबन्ध हो सकता है; बंगला भी है; स्कूल में भी योग्य सज्जन ठहर सकते हैं। स्कूल, डाक बंगले से, डेढ़ मील नीचे हैं। वहां भी हलवाई की दुकानें हैं। रामगढ़ से सवेरे चलकर शाम को पांच बजे या इससे पहले अल्मोड़ा अच्छी तरह पहुंच सकते हैं। रास्ते में दस मील पर प्यूड़ा का पड़ाव है। यहां कुछ देर ठहरकर सुस्ताना ठीक होगा। यहां का जल बड़ा गुणकारी है। रामगढ़ से प्यूड़ा पहुं-चने में रास्ता बहुत अच्छा है; सुन्दर सड़क है; दृश्य मनोहर हैं। केवल सवामील की कठिन चढ़ाई है। प्यूड़ा से आगे पांच मील का उतार है। इसके बाद अल्मोड़ा पहाड़ की चढ़ाई शुरू होती है। यहां पर दो पहाड़ी नदियों का संगम है

और पुल बंधा है। अल्मोड़ा की साढ़े चार मील की चढ़ाई चढ़ने पर शहर में पहुंच जाते हैं।

अल्मोड़ा शहर

कूर्माञ्चल की इस पर्वतमाला में अल्मोड़ा सब से बड़ा शहर है। इसकी आबादी दस ग्यारह हज़ार के लगभग होगी। यहां का जलवायु अति नीरोग है इसलिए भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोग यहां आते हैं। ख़ासकर तपेदिक के बीमारों के लिए तो यहां की आबोहवा अति गुणकारी है। प्रत्येक वर्ष इस बीमारी से दुखित देशबन्धु यहां आकर लाभ उठाते हैं। जिन भाइयों को अपनी शारीरिक अवस्था सुधारने के निमित्त यहां आना हो वे—

मन्त्री सनातन धर्म सभा
अल्मोड़ा,
अथवा, श्री परमा चौधरी
मल्ली बाज़ार अल्मोड़ा

से पत्रव्यवहार कर पहले स्थानादि किराये का ठीक ठाक करलें। बहुत से भोले भाले बन्धु यहां आकर बुरी तरह ठगे जाते हैं। उनको धूर्त मकानवाले दुगुणे तिगुणे किराए पर मकान देकर पहले किराया वसूल कर लेते हैं पीछे से टूटी फूटी किसी वस्तु की मरम्मत नहीं करते। सारा किराया आरम्भ में कभी न देना चाहिए। आधा दे दिया, आधा फिर महीने दो महीने बाद अच्छी प्रकार मकान के गुण दोष समझकर देना उचित है।

संयुक्त प्रान्त के इस छोटे से शहर में शिक्षा का अधिक प्रचार है। बहुत से ग्रेजुएट, वकील, जज, पेन्शनर यहां पर

मिलेंगे। कुशाग्रबुद्धि ब्राह्मणों की यहां कमी नहीं। पर मुझे बड़े दुःख और सन्ताप से कहना पड़ता है कि इनकी बुद्धि और शिक्षा सब स्वार्थ में खर्च होती है। नौकरियों के भूखे अपना सर्वस्व इसके लिए हारने को उद्यत हैं। खुशामदी, मक्कार, चुग़लखोर, भीरु ऐसे लोगों की यहां भरमार है। पबलिक कामों में कोई दिलचस्पी नहीं लेता। जो कोई करने को खड़ा हो उसके रास्ते में रोड़े अटकाने को सर्वदा उद्यत हैं; उसकी बुरी से बुरी शिकायतें अधिकारियों के कानों तक पहुंचाने में कभी नहीं चूकते।

इन शिक्षित—परन्तु अशिक्षितों से भी बदतर—लोगों की कृपा से यहां ईसाइयों का बड़ा ज़ोर है। यहां के लोग स्व-स्वाभिमान से ऐसे हीन हैं कि अपना निज का जातीय हाई स्कूल व कालेज न बनाकर ईसाइओं के कालेज के लिये हजारों रुपये का चन्दा देने को उद्यत हैं। अपना एक छोटा सा स्कूल है। उसकी सहायता करने में सैकड़ों बहाने बनाते हैं पर ईसाइयों की सहायता के लिये झट रुपया जेब से निकालने को तैयार हो जाते हैं।

अलमोड़े को अपनी इस पतितावस्था में थोड़ी बहुत आशा अपने नवयुवकों से है। पिछले पांच चार वर्षों से कुछ सुधार के चिन्ह दिखाई देने लगे हैं। यद्यपि नौकरी की कीच में फंसे हुये बुड्ढे नवयुवकों को बहुत हानि पहुंचा रहे हैं तो भी समय की जागृति के सामने इनकी कुछ पेश नहीं जाती। समय अपना प्रभाव इस संकुचित हृदयवाले नगर पर भी डाल रहा है। झूठे आडम्बरों की नसें धीरे २ ढीली हो रही हैं। नवयुवकों के उत्साह से यहां एक हिन्दी पुस्तकालय है जिसकी

संचालक 'शुद्ध साहित्य समिति' है यदि यहां के स्वयंभू नेता आपस का ईर्षा द्वेष छोड़ कर नवयुवकों की सहायता करें तो इस शहर में बहुत शीघ्र जाग्रति हो सकती है पर उनको अपनी झूठी जोड़ तोड़ लगाने से फ़ुरसत मिले तब न।

* * * * *

इस अलमोड़ा पर्वत पर मैं तीन वर्ष से आता हूं। पहले दो वर्षों में व्याख्यानों में फसा रहने के कारण मैं कहीं जा आ न सका। इस वर्ष जून १९१५ में मैंने अपने कैलाश दर्शनके पुराने संकल्प को पूरा करने का विचार किया। कोई ख़ास तैयारी तो इसके लिये कर नहीं सका। थोड़ा सा सामान साथ लेकर अपनी इस विकट यात्रा को पूरा करने के लिये निकला।

पाठक महोदय! आइये आपको इस यात्रा का मज़ा चखावें।

यात्रा का प्रारम्भ

१५ जूनको चलने का विचार था परन्तु तैयारी में कसर रह गयी, इसलिये रुक जाना पड़ा। बुधवार १६ जूनको सबेरे चार बजे उठा। आकाश मेघों से अच्छादित था। शौचादिसे निवृत होकर सामान बाँधा। दो स्वेटर, एक सिर कान ढँकने का ऊनी टोप, दो गंजी, मृग चर्म, दो ऊनी हलकी चद्दरें, एक विछाने का कम्मल, गीता की पुस्तक, डायरी, दो पहनने की रेशमी चद्दरें, तीन कौपीन, चार रुमाल, एक तौलिया, चन्दन की माला, १७ रुपये, दो रुपये की दोअन्नी चौअन्नी* इतना सामान तथा हाथ में कमंडलु, छाता और लट्ठ लेकर मैं तैयार हो गया। अलमोड़े में मेरा स्थान शहर से दो मील के फ़ासले

*तिब्बत में अंगरेज़ी नोट और गिन्नी नहीं चलती। केवल रुपये दोअन्नी, चौअन्नी आदि चलते है। लेखक।

पर है। इसलिये दो तीन सज्जन जो मुझे पहुंचाने के लिये शहर से आने वाले थे उनकी मुझे प्रतीक्षा करनी पड़ी। साढ़े पांच बजे के करीब वे महाशय आ गये। एकने मेरा बोझा उठा लिया। परमात्मा का नाम लेकर मैं यात्राके लिये निकला।

अल्मोड़े से कैलाश की ओर जाने में पहले बागेश्वर आता है और बागेश्वर अल्मोड़े से २६ मील की दूरी पर है। तीन मील तक तो हम लोग पांच जने थे। इसके बाद मैंने शहर के तीन सज्जनों को लौटा दिया। मैं और विद्यार्थी हरिदत्त दोनों बागेश्वर को ओर चले। हरिदत्त को सामान उठाने के लिये बागेश्वर तक साथ ले लिया था।

इधर के पहाड़ों पर चीड़के वृक्ष ही अधिक होते हैं। जिधर दृष्टि दौड़ाओ, चीड़ ही चीड़। गवर्नमेंटको करोड़ों रुपये की आमदनी इन वृक्षों से होती है। प्रत्येक वृक्षके निम्नभाग के किसी स्थान की छाल प्रगट कर उसके नीचे एक मिट्टीका गिलास सा लगा देते हैं; पेड़ का तेल धीरेधीरे उसमें टपकता रहता है। इसीका तारपीन Turpentine बनाया जाता है। करीब करीब सभी वृक्षों के नीचे ऐसे गिलास लगे हुये देखने में आये।

पहाड़ी सड़क में चढ़ाव उतार होता ही है कहीं दो मील चढ़ाई तो तीन मील उतार। आठ आठ दस दस घर जहां बने हों वही गांव है। पहाड़ों के बीच चलते हुये यात्रीको दूर से घर चमकते हुये दिखाई देते हैं। घर साफ़ सुथरे चूने से अच्छी प्रकार पुते हुये धूपमें भले बोध होते हैं। सीढ़ियों जैसे खेत एक के ऊपर एक, अपनी हरियाली से आंखों को तृप्त करते हैं। ऊंचे ऊंचे पहाड़ों पर गाय भैंस बकरी चरते हुई दिखाई देते हैं।

१३ मील चलकर ताकुला पहुंचे। दस बज चुके थे। रास्ते भर तो खूब ठण्डा रहा। यहां आते ही ज़ोर से वर्षा होने लगी। ताकुला देवीके मन्दिर में आज भण्डारा था। यह भण्डारा हैज़ेको दूर भगाने के लिये किया गया था। हरिद्वार से लौटे हुये कुम्भके यात्री हैज़ा साथ ले आये थे। उनके द्वारा इर्द गिर्दके पहाड़ी गावों में बड़े ज़ोर शोर से हैजा फैल रहा था। उसीको दूर भगाने के लिये यह यज्ञ किया गया था। वर्षाके कारण मैं तो पहाड़ी के ऊपर एक क्षत्री केमकान में चलागया। वहां जाकर खिचड़ी बनवा कर खाई। गांव के लोगों ने रसद पहुंचायी। मैंने दाम देने चाहे पर 'साधु महात्मा' से दाम कौन ले। दो पहर कोदो चार लोग आकर बैठ गये और अपना दुखड़ा कहने लगे। गवर्नमेण्ट के जङ्गल विभाग के सख़्त नियमों के कारण यह ग्रामीण लोग बड़े दुखी हैं। बेचारे कहीं कोई लकड़ी तक नहीं तोड़ सकते। गोचर भूमि को Forest Reserve का नाम देकर पशुओं की स्वतन्त्रता छीन ली गयी है। एक बेचारा गरीब ब्राह्मण महा दुखी, उसके गाय बैलों को बाघ मार गया था। बिना शस्त्रों के ये बेचारे दीन, हिंसक जन्तुओंका सामना नहीं कर सकते। बिना जङ्गल विभाग के अधिकारियों के जरनेली हुक्मके ये लोग हिंसक जन्तुको मारने के लिये जङ्गल में नहीं घुस सकते। बेचारे अपना अपना दुखड़ा कह रहे थे। उनकी इस बेकसी को देखकर मुझे भारीदुःख हुआ।

बृहस्पतिवार १७ जून—रात कष्ट से कटी। मच्छरों ने सताया। सबेरे चार बजे उठ कर चले। ताकुला छोटा सा

गाव है ; दो पहाड़ियों के मध्य घाटी में है । गणनाथ नदी बीच में बहती है । यहां खेत सीढ़ियों ऐसे नहीं है । घाटी चौड़ी होने के कारण कुछ चौरसपन आगया है । धान के खेत हरे भरे हो रहे थे । आज ताकुला से वागेश्वर जानेवाला एक और साथी मिलगया । वह वागेश्वर के डाकखाने में चिठीरसां होकर जा रहा था । उसीके साथ बातें करते हुये चले । रास्ते में स्थान २ पर पनचक्कियां देखने में आईं । इधर पनचक्कियों का अधिक प्रचार है। पहाड़ी नालों की कमी नहीं । वे ऊपर से नीचे आते हैं, इसलिये उनमें वेग भी होता है । उसी वेग की शक्ति से पनचक्की चलती है । आज भी दिन ठण्डा था । पहाड़ी दृश्य देखते हुये, पहाड़ी नालों की गड़ २ सुनते हुये, आनन्द से जा रहे थे । कहीं नाले के किनारे किनारे जा रहे हैं कहीं वृक्षों से घिरे हुये ठण्डे मार्ग से । कहीं दोनों तरफ़ लम्बे लम्बे चीड़ के वृक्षों की सर सर ध्वनि सुनाई देती है ; कहीं बिलकुल नीचेकी ओर उतर रहे हैं; कहीं थोड़ा चढ़ाव है । दस बजे के करीब एक ऊंची चढ़ाई के पास पहुंचे । यहां से डेढ़ मील की बिकट चढ़ाई है । धीरे धीरे कई जगह दम लेते हुये पहाड़ के ऊपर पहुंचे और उस चढाई को तय किया । रास्ते में पसीने से नहा गया । ज़ब चढ़ाई खतम हुई, तब ठण्डे पानी की धार मिली । वहां बैठकर दम लिया और जल पिया । ठण्डा बर्फ़ानी जल क्या स्वाद देता था । वाह !

चढ़ाई खतम कर, प्यास बुझाकर जब मैं ऊपर पहुंचा, तब एक बड़ा बगीचा देखने में आया । उसकी दीवार के पत्थर पर बैठकर मैं गाने लगा ।

छोड़ो न तुम धर्मको चाहे जान तन से निकले,
हो बात सत्य लेकिन मीठे बचन से निकले।
अग्नि का धर्म जब तक रहता है उसमें कायम,
हाथी की क्या है शक्ति जो पास होके निकले।
फिर अपना धर्म तज कर जब राख वह हो जावे,
चींटी निधड़क होकर ऊपर से उसके निकले।
है धर्म की यह महिमा यदि इसको धार लो तुम,
शेरे बबर की मानिन्द शक्ति बदन से निकले।
डर डर चलेगा वुही डूबा गुनाहों में जो,
थे ईश के जो प्यारे वे सूर्य बन के निकले।

मैं गाने का आनन्द ले रहा था और विद्यार्थी हरिदत्त पीछे आर हा था। उसके पास बोझ होने के कारण वह बहुत धीरे धीरे चलता था। डाक बाटने वाले साथी को मैंने विदा कर दिया।

हरिदत्त के आने पर हम दोनों साथ २ चले। अब उतार था। जल्दी २ बढ़े चले गये। खूब ठण्डा हो रहा था। चलते २ कोई अढ़ाई मील गये होंगे कि एक पहाड़ी आदमी एक ओर से भागा हुआ आया और विनीत भाव पूर्वक मुझ से बोला, "आज आपको हमारे मन्दिर में निमंत्रण है"। भूख लगी हुई थी प्रेमका निमंत्रण स्वीकार कर लिया। ऊपर उसके मन्दिर में पहुंचे। वहां गोरखनाथ की धूनी जल रही थी। हवन का सब सामान जुटा था। छः सात आदमी बैठे थे। पुजारी लोग भी थे। मेरा परिचय पाकर वे बड़े प्रसन्न हुये। नाम तो उन्होंने मेरा पहिले से सुन रक्खा था। खैर, नहा धोकर हवन की तैयारी की। मैंने हवन में सहायता दी। कार्य समाप्त हुआ। मेरे विद्यार्थी ने भोजन बनाकर खिलाया।

यहां भी हेज़े को दूर भगाने के लिये यह सब कुछ किया

गया था। वर्षा अधिक हो जाने के कारण मैंने यहीं ठहरने का निश्चय कर लिया। एक प्रेमी बन्धु मुझे अपने घर में लेगये। वहां जाकर आराम किया। चार बजे वर्षा बन्द होजाने पर हरिदत्तको अल्मोड़ा वापिस भेज दिया। यहां से कुली का प्रबन्ध हो गया था। रात को मन्दिर में मेरा व्याख्यान हुआ। इर्द गिर्द के गाँवों के लोग इकट्ठे हुये। ख़ासा जमाव होगया। "धर्म क्या है ?" इस विषय पर व्याख्यान दिया। लोग बड़े प्रसन्न हुये।

१८ जून शुक्रवार से २० जून रविवार तक—बोरा आठ दस घरों का ग्राम है। पहाड़ी ग्राम ऐसेही होते हैं। यहां से बागेश्वर साढ़े तीन मील है। सवेरे सात बजे ग्रामवालों से विदा होकर मैं बागेश्वर की ओर चला। डेढ़ दो मील का कठिन उतार है। पहाड़ों पर दूर तक सिवाय चीड़ के लम्बे लम्बे वृक्षों के कुछ दिखाई नहीं देता। इन वृक्षों से गिरा हुआ घास, पहाड़ी सड़क को फिसलाऊ बना देता है। उसके ऊपर से जूता बेतरह फिसलता है। ख़ैर।

उतार पूरा हुआ। चौड़ी घाटी में पहुंचे। यहां मैदान है। सरयू नदी की घाटी आरम्भ होजाती है। इसके किनारे किनारे चला। खेतों में स्त्रियां काम कर रही थीं। उनको देखता हुआ बढ़ा चलागया। यहां मच्छर अधिक हैं। आठ बजे के बाद बागेश्वर दीख पड़ा। गोमती और सरयू का यहां सङ्गम होता है। गोमती छोटे नाले के बाराबर है। हां, बरसात में खूब बढ़ती होगी। इस पर पुल बंधा है। पुल पार करके बागेश्वर के बाज़ार में पहुंच गया। मेरे प्रेमी, जो पहले दिन सन्ध्या को बागेश्वर से दो मील पर मुझे लेने

गये थे और निराश होकर लौटे थे, आज वहां बाज़ार में मिले। उन्होंने प्रेमपूर्वक बागेश्वर सरस्वती पुस्तकालय में ले जाकर मुझे ठहराया।

यहां आकर मेरा प्रोग्राम बदलगया। अल्मोड़े से मैंने बागेश्वर होकर अस्कोट के रास्ते जाने का निश्चय किया था। मानसरोवर जाने का वह सीधा मार्ग है। यहां बागेश्वर के लोगोंने कहा, कि जोहार के रास्ते जाना चाहिये, क्योंकि पूरी परिक्रमा तभी होगी जब पहले कैलाश दर्शन हों और पीछे से मानसरोवर में स्नान किया जाये। 'एवमस्तु' कहकर मैंने स्वीकार करलिया और जोहार की ओर जाने की तैयारियां करने लगा। जोहार का रास्ता बड़ा विकट है, यह मैंने पहले ही सुन रखा था। अपने अल्मोड़े के मित्रों को प्रोग्राम परिवर्त्तन की सूचना दे दी। बागेश्वर के व्यापारियों ने जोहार के अपने भुटिये मित्रों को मेरी यात्रा की ख़बर भेज दी और अपनी शक्ति भर सेवा करने को लिख दिया।

अब लगे सामान जुटाने। लोग कहने लगे,—"जोहार के रास्ते शाक तरकारी नहीं मिलती। रास्ता विकट है। मच्छर डाँस, मक्खी बुरी तरह सताते हैं। जोंकें रास्ता चलते जूते में घुस जाती हैं। ऊंटाधुरा, जयन्ती, कुङ्ड़ी बिङ्ड़ी तीन बर्फ़ानी पहाड़ों को लांघते समय पहाड़ी विष चढ़ जाता है, उलटी होने लगती है।" तरह तरह की सूचनाएँ मिलीं। मैंने घुटनों तक एक जोड़ा काली जुराबों का लिया। साढ़े पांच सेर सूखे फलों—बादाम, किसमिस, छुहारा, नारियल—की थैली तैयार करवायी; एक लम्बी पहाड़ी लकड़ी ली। खटाई आदि भी साथ बांधी। तीन दिन बागेश्वर में रहे। तीन व्याख्यान

दिये। बागेश्वर क्लब की नवयुवक मण्डली मेरे लिये सामाना जुटाती रही।

पाठक ! आइये, आपको बागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य दिखलाकर यहां की कुछ बातें बतलावें।

बागेश्वर में सरयू नदी का दृश्य

दोनों ओर दूर तक लम्बी, ऊंची, हरी हरी पहाड़ियों के बीच, चौरस घाटी में आप अपने आपको खड़ा हुआ समझिये। उसी घाटीके बीच पत्थरों को रगड़ती हुई सरयू नदी वह रही है।.पत्थरोंकी रगड़ से गड़गड़ाहट की ध्वनि बराबर कान में आ रही है। पिता हिमाचल की गोद से निकल कर अपने सहचारियों के साथ टेढ़े मेढ़े चक्कर काटती हुई सरयू मस्तानी चालसे बागेश्वर में पहुंचती है। यहां पश्चिम से आने वाली अपनी बहिन गोमती के स्वागत के लिये यह अपनी चाल धीमी कर बड़े प्रेम से उसकी ओर निहारती है फिर वेग से आगे बढ़कर भगिनी का मुख चूमती है।

अहा ! क्या सुन्दर दृश्य है। सरयू के किनारे पश्चिम की ओर पीठ कर खड़े होने से सामने निकट चण्डी पर्वत के दर्शन होते हैं। उसके ऊपर चण्डी महारानी का मन्दिर है। पीछे पश्चिम में नील पर्वत अपनी छटा दिखलाता है। इस पर भगवान नीलेश्वर विराजमान हैं। पूर्व से भागीरथी की धारा आकर सरयू जी का चरण छूती है भागीरथी। और सरयू मिल कर जहां गोमती से भेंट करती हैं वहां संगम पर बाघनाथ जी का प्राचीन मन्दिर है यहां मकर संक्रान्ति १३ जनवरी को बड़ा भारी मेला होता है। बागेश्वर सरयू जी के दोनों किनारों पर बसा है। दोनों किनारों पर आमने सामने दूकानें हैं। दो पुल बने हैं—एक गोमती पर दूसरा सरयू पर।

बागेश्वर मंडी है। मेले पर यहां दूर दूर से लोग आते हैं। तिब्बती चीजें: थुल्मे, चुटके, घोड़े, चंवर, मुश्क, पश्मीने, नीलम, सुहागा, नमक, बेतकी चटाइयां, पिटारे, खालें बिकने के लिये आते हैं। यहां से रानीखेत, गढ़वाल, अल्मोड़ा, शोर, अस्कोट, कैलाश को रास्ते जाते हैं। बागेश्वर में सरदी अच्छी पड़ती है पर बर्फ़ नहीं गिरता। गरमियों में गरमी होती है. पर लू नहीं चलती। साये में ठण्डा रहता है। यहां एक क्लब "बाज़ार एसोसियेशन क्लब" बीस वर्ष से है। इसके साथ हिन्दी का एक छोटा सरस्वती पुस्तकालय भी है। इसमें हिन्दी के समाचार पत्र तथा पत्रिकायें आती हैं। नागरिकों के उद्योग से 'विद्या-प्रचारक' नामी रात्रि पाठशाला भी खुली हुई है। श्रीशिवप्रसाद चौधरी शिलाजीत वाले बड़े उत्साही सज्जन हैं। क्लब, पाठशाला आपके उद्योग से चल रही है। नवयुवकमण्डली भी अच्छी है। ईश्वर चाहेगा तो इन नव-युवकों के द्वारा बागेश्वर में शीघ्र विद्याप्रचार की जड़ जम जायेगी।

पुलके पास ऊंचे पत्थर पर बैठकर मैंने सरयूजी की खूब बहार देखी। स्नान का बड़ा आनन्द आया। बागेश्वर में तीन रोज़ रहा, सरयूजी का स्नान नहीं भूलेगा। अवधवासियों को चाहिये, कि बागेश्वर में जाकर सरयू स्नान का विचित्र आनन्द लूटें। इधर की छटा ही निराली है।

जून २१ सोमवार–सवेरे छः बजेके बाद बागेश्वरसे चला। मेरे प्रेमियों ने मेरा सामान–बिस्तरा और फलोंकी थैली–उठा-नेके लिये कुली तलाश कर दिया था। मैंने सबसे "वन्दे" कहा। फिर छतरी कमण्डलु, और लम्बी लकड़ी उठा सड़क पर हो लिया।

एक नवयुवक मुझे सात मील तक पहुंचाने के लिये साथ चल पड़ा। अब हम सरयू के किनारे किनारे चले। बागेश्वर से १८ मील मुझको सरयू घाटी होकर जाना था। मनस्यारी होकर कैलाश जाने का यही रास्ता है। मार्ग के दृश्य देखते और ग्रामीणों के पहाड़ी आलाप सुनते हुये हम अपने निर्दिष्ट स्थान पर पहुंच गये। धूप चढ़ गयी थी इसलिये स्नान की ठानी। यहां सात मील पर एक बँगला बना है। यह बागेश्वर के एक महाजन की दुकान है। यहीं विश्राम करने का निश्चय किया। घण्टा भर सरयूजी में स्नान किया। शीतल जल से धूपकी गरमी दूर होगई। जो नवयुवक मेरे साथ आया था उसने भोजन तय्यार किया। भोजनोपरान्त तीन घंटा विश्राम कर फिर चलने की ठानी। कुली को सब से पहले भोजन खिला कर आगे रवाना कर दिया था। तीन बजे के करीब मैं वहां से चला। यहां पर एक कनफटे नाथ और एक उदासी साधु का मेरा साथ हो गया। ये दोनों महाशय भी कैलाश जा रहे थे। कनफटे बाबा तो चरसी होनेके कारण साथ नहीं चल सकते थे; हां उदासी महाशय मेरे साथ हो लिये। नवयुवक को मैंने बागेश्वर वापिस भेज दिया।

घनघोर घटा छा गयी। वर्षा होने लगी। सरयूजी का पहाड़ी राग सुनते जा रहे थे। सड़क खराब है। कहीं नदी के किनारे किनारे, कहीं फासले पर होकर गयी है। वर्षा से सड़क और भी खराब हो गयी है। भीगते भागते सात मील पूरे किये और कपकोट पहुंचे। यहां ग्रामीण भाइयों ने मेरा स्वागत किया। संस्कृत पाठशाला के अध्यापक ने संस्कृत में लिखा हुआ 'एड्रेस' दिया। मेरी इन भाइयों ने अच्छी खातर की। संध्याको ग्रामीण भाई इकट्ठे हुये। उनको

मैंने उपदेश दिया। शिक्षा के लाभ बतलाये।

रात को भोजन कर मैं चौबारे में लेट गया पर मच्छरों की कृपा से नींद नहीं आई। चरसीनाथ और उदासी साधु के लिये भी खाने पीने का प्रबन्ध कर दिया गया था।

जून २२ मङ्गलवार—कपकोट से सवेरे दुग्धपान करके चला। दोनों साधु कार्यवशात् पीछे रह गये। कुछ सज्जन दूर तक पहुंचानेके लिये साथ आये। सरयूके किनारे किनारे, प्रकृति माता के दृश्यों का आनन्द लेता हुआ, मैं चला। कपकोट से तीन मील तक सरयू घाटी का दृश्य बड़ा ही मनोहर है। सरसब्ज़ पहाड़ियों पर गाय बकरी चर रहे थे। किनारे किनारे जहाँ घाटी चौड़ी होगयी है, भूमि मखमली घाससे लदी हुई बड़ी सुहावनी दीख पड़ती है। दोनों ओर ऊंची ऊंची पहाड़ियां सरयूजी की शोभा बढ़ाती जाती हैं। नदी का पाट चौड़ा है पर जल कम है। क्योंकि अभी वर्षा आरम्भ नहीं हुई थी; आकाश निर्मल था।

आनन्द में मग्न मैं चला जारहा था। सामने गाय भैंस रास्ते में खड़ी थीं। उनके साथ मैले कुचैले कपड़े पहने हुये चरवाहे भी थे। लाठी से मैंने अपने लिये रास्ता किया। गाय बहुत छोटी छोटी और चरवाहे भी कमज़ोर दुबले पतले; ऐसे सुन्दर, सुहावने जलवायु में इनकी ऐसी दुर्दशा! गैया इधर की आधसेर तीनपाव दूध देती हैं और छोटी होती हैं। हिमालय तो वही है; उसकी नदियां भी वही हैं, परन्तु पहाड़ी मनुष्य और पशुओं पर अधःपतनने पूरा प्रभाव डाला है। पुस्तकों में पढ़ा करते थे कि पहाड़ी आदमी वीर, उत्साही और स्वतन्त्रताप्रिय होते हैं, पर इधर के पहाड़ियों में इन गुणों का सर्वथा अभाव है। सैकड़ों वर्षों के दासत्व ने इनका

मनुष्यत्व नष्ट कर दिया है ; दासता इनके चेहरों पर झलक रही है ; वेगारी का बोझ ढोते ढोते इनका स्वत्वाभिमान नष्ट हो गया है । ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र सभी में दासता के भयंकर दुर्गुण विद्यमान हैं । अल्मोड़ा से लेकर यहां तक पर्वतियों की यही दशा देखी ; नीचावस्था (Degeneration) का पूरा राज्य पाया ।

पर सरयू अपनी उसी पुरानी चाल से, अपने उसी यौवन मद में, लड़ती झगड़ती जा रही है । उसको अपने काम से काम है । सड़क के किनारे किनारे, ठण्डे स्रोतों का जल यात्री की प्यास को दूर करता है । तीन मील पूरे होगये, सरयू जी की घाटी छोड़ कर जोहार का रास्ता पकड़ा । यहां दो पथ हैं । एक तो पिण्डरी ग्लेशियर को जाता है; दूसरा कैलाश की ओर गया है । मैं और मेरा कुली दाहिने रास्ते हो लिये । नाले के किनारे किनारे चले । यहां पर मेरे मनमें विचार उत्पन्न हुआ:— "पानी सभ्यता प्रचार करने वाला बड़ा भारी इन्जीनियर है । पहाड़ों को काट कर रास्ता बनाने वाला और सभ्यता फैलाने वाला जल है । कैसे कैसे पर्वतों को इसने काटा है; कहां की मिट्टी ला कर यह खेत बनाता है । दुर्गम्य हिमालय में मार्ग बनाना इसीका काम है ।" नाले के किनारे किनारे सुन्दर सड़क बनी हुई है । बादल आ जाने से ठण्डा होगया था । छोटे छोटे, दस पांच घरों के ग्राम कई देखने में आये । जगह जगह हरे हरे धान लहलहा रहे थे । जहां थोड़ी सी भूमि मिली वहीं खेती कर लेते हैं ; बेचारे पहाड़ी इसी पर गुज़ारा करते हैं ।

मैं आज जुराब पहन कर नहीं चला था, इसलिये मच्छरों ने कुछ सताया । यात्री को चाहिए, कि कपकोट से जुराबें

पहर ले; जुराबें घुटनों तक हों। दो चार साथियों के साथ यात्रा करे तो अच्छा है। क्योंकि आज कल यहाँ रास्ता बहुत कम चलता है, कोई पथिक रास्ते में नहीं मिलता, इस लिये उन बन्धुओं को जो नगरों में रहने वाले हैं ऐसे निर्जन पथ में भय लगेगा। यद्यपि डर किसी जीव जन्तु का नहीं और न ही लूट घसूट का भय है, पर दृश्य बड़े वन्य हैं। 'एकान्त' इस शब्द की सार्थकता बोध होने लगती है और नास्तिक भी आस्तिक बनने की इच्छा करने लगता है।

नौ मील चलकर चढ़ाई मिली। धीरे धीरे, कदम कदम, आहिस्ता आहिस्ता चढ़ना शुरू किया। थोड़ी दूर चढ़ता, थक जाता। किसी प्रकार उन दो मीलों को पूरा किया। शामाधुरा के निकट पहुंचे। स्वागत के लिये दो सज्जन आगे से खड़े थे। बड़े प्रेम से ले गये और अपनी दुकान में ले जाकर ठहराया; सेवा की। अहा! वह मनुष्य कैसा भाग्यवान है, जिसकी मंज़िल पूरी होने पर प्रेमी सज्जन अगुवानी करते हैं, और मीठे मीठे शब्दों से उसकी थकावट दूर कर देते हैं। अमरीका में जब मैंने २३०० मील की यात्रा की थी, तो चालीस मील पैदल चलकर जाता, मगर मंज़िल पूरी होनेपर न ठहरने का ठिकाना, न खाने का प्रबन्ध, न पैसा पास! वे दिन कैसे कटे थे; कभी भूलने वाले नहीं।

डेढ़ घण्टे बाद उदासी साधु भी पहुंच गया। न्हाये, धोये; पत्र लिखे। कुछ आराम किया, चरसीनाथ भी धीरे धीरे आ पहुंचा। ये दोनों महाशय थे निरे मूर्ख, काला अक्षर भैंस बराबर था। चरसी नाथ तो अवस्था में बड़े होने के कारण कुछ सभ्य भी था, उसे कुछ सत्सङ्ग भी हो चुका था, पर उदासी साधु तो निरा गँवार पंजाबी जाट था। सिवाय खाने पीनेकी

बातके दूसरी चर्चा न थी। मैंने आज उसे देवनागरी वर्णमाला के पहले छः अक्षर सिखाये। उसकी आवाज़ अच्छी मीठीथी, इसलिये मैंने चाहा कि कुछ देशहित संबंधी भजन सिखाकर इससे काम लिया जावे। पर उसकी स्मरण शक्ति बड़ी ख़राब थी; वह भजन कण्ठ नहीं कर सकता था। दो घण्टा सिर खपाकर हार कर मैंने छोड़ दिया। क्या करता, थके हुये यात्री से पत्थर में छेद नहीं हो सकता था।

रात को अच्छी तरह नींद नहीं आई जहां मैं सोया था, वहां बहुत से चूहे आकर कबड्डी खेलने लगे। उनको मैंने बहुतेरा मना किया, पर भला वे मूसरचंद कब माननेवाले थे।

जून २३ बुधवार—खा पीकर चले। अल्मोड़ा से बागेश्वर २६ मील, बागेश्वर से कपकोट १४ मील, कपकोट से शामाधुरा ११ मील,—कुल ५१ मील आ चुके थे। आज हम को तेजम पड़ाव पर पहुंचना था। यह शामाधुरा से आठ मील के क़रीब है। खा पीकर १२ बजे के बाद में और उदासी साधु चले। शामाधुरा के पोस्टमास्टर महाशय ने मेरा असबाब मनस्यारी पहुंचाने के लिये कुली का प्रबन्ध करदिया। मनस्यारी यहां से तीसरा पड़ाव २८ मील पर है।

आध मील तक चढ़ाई है। यहां तक तो दो चार प्रेमी हमें छोड़ने आए। उनसे प्रेमपूर्वक विदा होकर हम आगे बढ़े। थोड़ी दूर तक मैदान है। सड़क मज़े की है, बातें करते करते चले गये। आगे बेढब उतार है। सड़क टूटी हुई, पत्थर रास्ते में, मैं दो बार गिरा, बच गया। यदि सड़क से नीचे फिसल जाता तो रामगङ्गा में ही जाकर पहुंचता। मालूम नहीं अल्मोड़ाके अधिकारीवर्ग क्यों आंखें मूंदे पड़े हैं। ऐसी रद्दी सड़क जहां रोज़ डाकवाला बेचारा आता जाता है,

जहां जाड़े में सैकड़ों हज़ारों पशु ऊपर से नीचे तथा नीचे से ऊपर जाते हैं, ऐसी बुरी सड़क पर चलते हुए उन ग़रीब ग्रामीणों के दिलों में अपने ज़िले के अधिकारियों के प्रति कैसे कैसे भाव उठते होंगे। धिक्कार है उन मनुष्यों को, जो बड़ी ज़िम्मेदारी के ओहदे को ले तो लेते हैं, पर कर्तव्य पालने में ऐसे कच्चे हैं, कि हज़ारों आत्माओं को उनकी असावधानी से कष्ट उठाना पड़ता है।

सामने रामगङ्गा चमक रही थी। बड़ी कठिनाई से उस रद्दी सड़क को पूरा किया। आगे सड़क और भी टूटी हुई थी, इसलिये रामगङ्गा की बजरी बजरी चलकर पुल पार किया और नदी के दूसरे किनारे पहुंच गये। यहां से तेजम केवल मीलभर रह जाता है। विचार किया कि रामगङ्गा के स्वच्छ जल में स्नान करलें। चरसीनाथ भी आ गये थे। तीनों ने रामगङ्गा में ख़ूब स्नान किया। रामगङ्गा का प्राकृतिक दृश्य यहां बड़ा विकट है। बड़ा पाट है और दोनों ओर बड़े ऊंचे ऊंचे पहाड़ हैं। जब वर्षा में रामगङ्गा चढ़ती है तो पहाड़ टूट टूट कर बहे चले आते हैं। उस समय नदी का रूप बड़ा विकराल हो जाता होगा। ख़ैर, स्नान कर उष्णता मिटाई और चले। तेजम के पास एक दूसरी छोटी नदी रामगङ्गा में आकर मिली है। उसका पुल दो लम्बे लकड़ी के लट्ठे रखकर बनाया गया है। पार करते समय बड़ी सावधानीसे चलना पड़ता है। उसको पारकर तेजम पहुंचे। यहां एक ही दुकानदार है उसके घर जाकर डेरा किया। असबाब उसके यहां छोड़कर मैं रामगङ्गा के साथ बातें करने

*यह रामगङ्गा सरयू की सहायक नदी है। मुरादाबादवाली बड़ी रामगङ्गा नहीं। लेखक—

के लिये चला। उदासी साधु भी मेरे साथ हो लिया। रामगङ्गा के बीच एक ऊंचे पत्थर पर मैं बैठ गया! उदासी साधु दूसरी जगह फासले पर जा बैठा। क्या क्या भाव मेरे हृदय में उठे।

जल की तरङ्गें मेरे पत्थर के इर्द गिर्द होकर जा रही थीं। रामगङ्गा यहां पहाड़ के बिल्कुल नीचे होकर बहती है और पाट ज़रा छोटा है। बड़े बड़े ढोंके पत्थर उसकी धार के बीच में पड़े हैं, मानो उसको जाने से रोकते हैं। वे कहते हैं:- "मत जाओ प्यारी मत जाओ।" वह क्या अठखेलियां करती है। उनके साथ आलिङ्गन करके नाच रही है—उनके गले में अपनी दोनों भुजाएं डाल—किस प्रेम से विदा चाहती है। जिस प्रसन्नता से वह जारही है, ऐसा मालूम होता है कि उसको अपने निर्दिष्ट स्थान का हाल मालूम है। सुनो सुनो, विदा होते समय क्या कहती है,—"मैके जाती हूं,मैके! बहिन सरयू से मिलने जाती हूं"—क्यों न हो, इसीलिये तो ऐसी प्रसन्न है। ससुरालमें पर्देके अन्दर बन्द पड़ी रही-न कहीं जा सके, न आ सके-शरीर की लाली सब उड़गई, चेहरा सफेद पड़ गया। अब मैके जाकर खा पीकर खूब हृष्ट पुष्ट होजायेगी। हां, हां इसीलिये तो इतनी प्रसन्न है। बड़े बड़े पत्थर तो इसका रास्ता रोक रहे हैं, उसके जाने से अप्रसन्न हैं, मगर वह देखो, पहाड़ी वृक्ष लताएँ किस प्रेम से उसको आशीर्वाद दे रही हैं;कैसे झुक झुककर अपना सन्देशा उसको कह रही हैं। वे कहती हैं:—"

"जा गङ्गे! जा। हमारे मैदान के भाइयों को हमारा कुशल मङ्गल कह देना।"

*　　*　　*　　*　　*　　*

सन्ध्या होगयी। मैं लौट आया। आकर भोजन किया। दुकानदार ब्राह्मण था, उसने तीनों का खाना बना दिया। खाकर सोरहे। रात को वर्षा हुई।

मेरी यात्रा का पहला खण्ड पूरा होता है। अल्मोड़े से तेजम तक हिन्दु सभ्यता और आर्य्य रंगरूप का प्रसार है, अब आगे मंगोल रंगरूप देखने में आएगा। तेजम से आगे 'भोट' का इलाका आरम्भ होता है, इसलिये दूसरे खण्ड को आरंभ करने से पहले हमें एकबार पीछे की ओर दृष्टि डालनी चाहिये। बरेली से काठगुदाम या हल-द्वानी तक तो रेल में, इसके बाद भीमताल, रामगढ़ प्यूड़ा, अल्मोड़ा, ताकुला, बागेश्वर, कपकोट, शामाधुरा और तेजम, यहां तक हम पहुंचे हैं। रेल की सड़क-काठगुदाम-६५ मील पर है और अल्मोड़े से हम ५८मील दूर आगये हैं। यहां से आगे जोहार शुरू होता है। अब तक हम अल्मोड़े के उस भाग में थे जहां भीरु दुकानदार, कुटिलनीतिज्ञ, नौकरी पेशा और दुर्बल किसानों की बस्ती है। अब इसके आगे हम उद्योगी, साहसी, व्यवसायी तथा पोढ़े शरीर वाले, परन्तु शिक्षा हीन भूटिओं, की भूमि में पैर धरेंगे। पर्वत निवासियों में जो गुण होने चाहियें वे अभी तक हमारे देखनेमें नहीं आये थे। मैदान से आने वाला यात्री पहाड़ में चोरी का अभाव अवश्य पाता है, परन्तु पहाड़ी नौकर बहुत कम ईमानदार मिलते हैं। इसका बड़ा भारी कारण उनकी निर्धनता है। यद्यपि साधारण दृष्टि के मनुष्य को इधर पहाड़ में निर्धनता बोध न होगी, क्योंकि यहाँ के ग्रामीणों के मकान साफ सुथरे, चूने से पुते हुये, पत्थरों से छाये हुये होते हैं, और मैदान के किसानों के घर मिट्टी के तथा घासफूस से छाये हुये होते हैं;

पर उसका एक मात्र कारण यहां पहाड़ में पत्थरों की अधिकता है। पहाड़ के ग्रामीण भी मोटा अन्न खाकर बड़ी कठिनाई से अपने दिन काटते हैं। कुली बेगार के मारे इनका नाक में दम है; जंगल विभाग के कड़े कानूनों की वजह से इनके पशु भूखों मरते हैं, और लकड़ी की इन्हें बड़ी दिक्कत हो गई है।

यहां तक हमने हिमालय का कोमल, मृदु जलवायु देखा है। हम लोग छः हज़ार, साढ़े छः हज़ार फीट तक ऊपर उठे होंगे। यह कमाऊँ की पहाड़ियां कहलाती हैं। अब इसके आगे हिमालय के शाही द्वार में घुसना होगा। जल, वायु, दृश्य, निवासी, सब बदल जायेंगे।

पाठक ! आइए भारत के द्वारपाल के श्वेत भवन में प्रवेश करें। अब तक तो इसका नाम ही सुना करते थे; अब तक तो इसके यश के भजन ही गाया करते थे। आइए, अब इसके दर्शन कर इसके मुख से अपनी प्राचीन कीर्ति-कथा श्रवण करें।

द्वितीय खण्ड

जोहार

अल्मोड़ा ज़िले में तेजम के पास, छोटी रामगंगा पार करने के बाद, जोहार परगना शुरू हो जाता है। इसके तीन भाग हैं:—मल्ला जोहार, गोरीफाट और तल्ला देश। गिरगाँव से मनस्यारी तक गोरीफाट और मनस्यारीसे मीलम तक मल्ला जोहार है। इस परगने में पश्चिमीभुटिया लोग बसते हैं। भोट

का इलाका तो बड़ा है। उसमें चौदान्स, ब्यास, दारमा, जोहार और गढ़वाल के भुटिये सब शामिल हैं। जोहारके पश्चिम गढ़-वाल ज़िले के नेती और माना घाटोंके पास रहने वाले भुटिए भी पश्चिमी भुटिये कहलाते हैं। जोहार के भुटिओं को शोका कहते हैं, और मानाघाटेके भुटिये मारचा कहलाते हैं। शोका और मारचा भुटिओं में शादी विवाह होते हैं। जोहारी लोग देखने में जापानी, चीनियों की तरह होते हैं। ऐसा मालूम होता है कि किसी काल में इधर चीनियों का राज्य था। चीनी औरतों के साथ हमारे लोगों का सम्बन्ध होने से उनकी सन्तान मंगोल आकृति की होगई है। अब भी भुटिआ व्यापारी तिब्बती औरतों के साथ सम्बन्ध करने में आगा पीछा नहीं करते। तिब्बतिओं के साथ इनका चाय पानी होता है। इनके नाम सब हिन्दू ढंगके हैं और अ-धिक नाम क्षत्रियों की तरह हैं। तेजम से नीचे के हिन्दू भुटिओं के हाथ का नहीं खाते; उनकी बड़ी छूत मानते हैं। कारण यह देते हैं कि हूण देश अर्थात् तिब्बत हिमालय पार है। वहां जाने से मनुष्य धर्म खो देता है, और भुटिए लोग तिब्बतिओं के हाथ का खाते पीते हैं इसलिये ऐसा नियम है। भुटिये लोग, यद्यपि नाम क्षत्रियों जैसे रखते हैं, मगर जनेऊ नहीं पहनते। कहते हैं कि उसके नियमों की पाबन्दी नहीं हो सकती। नैपाली क्षत्री भी तिब्बत में व्यापार करने जाते हैं। वे जनेऊ पहनते हैं इसलिये तिब्बत से लौटकर उनको प्रायश्चित करना पड़ता है।

जोहारी लोग बहुत ज़ियादा हमारे निकट हैं। वे हिन्दू रस्मो रिवाज को भी थोड़ा बहुत पालन करते हैं। उनमें धीरे धीरे शिक्षा का प्रचार भी होरहा है। वे अपने आपको अपने

पूर्वजों के निकट लाने का उद्योग कर रहे हैं। ब्राह्मणों से संस्कारादि भी कराने लगे हैं। वे अपने आपको "रावत" कहते हैं। जब कोई मर जाता है तो उसकी अस्थियां मानसरोवर में डालने जाते हैं। तिब्बती देवताओं की पूजाने भी अभी तक इनका पीछा नहीं छोड़ा। इनमें छोटी जातिके लोग डूमड़े कहलाते हैं। वे बढ़ई, लोहार, दरजी, मोची, ढ़ोली आदि का पेशाकरते हैं। रावत लोग डूमड़ों के हाथका नहीं खाते।

जोहारी लोग तीन जगह घर बनाते हैं। जून, जौलाई, अगस्त, सेपटेम्बर में तो यें लोग मीलम-मल्लाजोहार-में रहते हैं। मल्लाजोहार बहुत ठण्डा है। मीलम १२५०० फीट की ऊंचाई पर है। जाड़ों में मल्लाजोहार बर्फ़ से ढक जाता है। जब जाड़ा पड़ने लगता है तो जोहारी लोग अपने बाल बच्चों, भेड़ बकरीं तथा झब्बू (एक प्रकार का बैल) को लेकर नीचे मनस्यारी में आजाते हैं । मनस्यारी में अक्तूबर, नवम्बर दो महीने ठहरते हैं। जब यहां अधिक शीत पड़ने लगता है तो नीचे तेजम में रामगंगा के किनारे चले आते हैं। यहां दिसम्बर, जनवरी, फरवरी, मार्च के शुरू तक ठहरते हैं । फिर तेजम से मनस्यारी चले जाते हैं और वहां अप्रेल, मई तक रहते हैं। तेजम में आकर वे कुछ दिन ठहर कर नीचे कानपुर, बम्बई, कलकत्ता में माल लेने चले जाते हैं । वहां से महीने डेढ़ महीने में लौटते हैं। मनस्यारी में जाकर अपने तिब्बती सफर की तय्यारियां करते हैं। जून के महीने में अपना सारा लटर पटर लेकर पहाड़ी दुर्गम पथ को तैकर, वे लोग मीलम पहुंचते हैं। मीलम से जौलाई के आरम्भ होते ही हजारों बकरी, झब्बू, भेडें, अनाज और माल से लदे हुये, १८३०० फीट ऊंचे भयंकर घाटे (Pass) को तै करके तिब्बत

में जाते हैं, और वहां डुणिए तिब्बती लोगों के साथ व्यापार कर, अनाज़ और कपड़े लत्ते के बदले, ऊन, सोहागा, चंवर, पश्मीने, चुटके आदि माल लेकर लौट आते हैं। कैसा कठिन मार्ग है; कैसे राक्षसों के साथ व्यापार किया जाताहै, इन सब बातों का सविस्तर ब्योरा मेरी यात्रा में मिलेगा। डेढ़ दो लाख का व्यापार अकेले ऊंटाधुरा घाटे द्वारा जोहार के लोग करते हैं। रास्ता ऐसा विकट है कि एक बार हिमालय पार से लौटकर फिर कोई उधर का नाम न ले, परन्तु वे लोग हरसाल जान हथेली पर रख कर तिब्बत जाते हैं और अपने इधर का माल उधर पहुंचाते हैं। उनके पुरुषार्थ की जितनी प्रशंसा की जाय कम है।

सहृदय पाठक, मैंने भूमिका के तौर पर आप को जोहार का परिचय कराया है। अब आगे मेरी यात्रा में आप जोहार की सैर करेंगे, जलप्रपात देखेंगे; गोरी नदी के लुभायमान दृश्यों का आनन्द लूटेंगे; मीलम में दस बारह दिन रहेंगे; ग्लेशियरों पर घूमेंगे; देश सेवक भारत-द्वारपाल हिमालय से मुलाक़ात करेंगे;। कहां तक लिखूं; यह विचित्र यात्रा है।

भोट की सैर

२४ जून बृहस्पतिवार–सवेरे पांच बजे उठे। वर्षा हो रही थी। छतरियां तान कर चल पड़े। तेजम के पास जो नदी रामगंगा में मिलती है उसको ज़ाकुला कहते हैं। इसका कठिन पुल पार कर, इसके किनारे किनारे, ऊपर पहाड़ पर चढ़े। मखमल जैसी हरियाली से लदे हुये दो पहाड़ों के बीच यह ज़ाकुला नदी बहती है। घाटी का रास्ता तंग है इसलिये

पहाड़ी दृश्यों का स्वरूप बड़ा बन्य है। स्थान स्थान पर, ऊंची चौड़ी पहाड़ी भूमि पर. भुटिओं का झोंपड़ियाँ बनी हैं। बादल घाटी में बड़ी मौज से क्रीड़ा कर रहे थे, जिधर का मौका पाते उधर ही उलट पड़ते थे। सामने जल प्रपात दिखाई दिया। श्वेत सूत के तागे की तरह जल की धारा पहाड़ पर से वक्र गति से नीचे आरही थी। क्या ही नैसर्गिक दृश्य था।

चलते चलते एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। नरसी-नाथ तो पीछे था; उदासी साधु मेरे साथ थे। उस नाले के किनारे हम दोनों ने बैठकर हाथ मुँह धोया। यहां एक जोंक मेरे पांव में चिपट गई। उसको छुड़ाया; खून बहने लगा; पाओं को धो धो कर ठीक किया। इधर बहुत जोंके हैं, यात्री को अपने पाओं में लम्बी जुरावें पहन लेनी चाहिये। फिर चल पड़े। थोड़ी दूर गये कि बादल फट गया। स्थान स्थान पर ग्रामीण लोग हल चलाते हुए दिखाई दिए। थोड़ी थोड़ी भूमि से फ़ायदा उठाने का उद्योग किया जाता है। पहाड़ी घास बड़ा ही सुन्दर मालूम होता था। आहा! यह दृश्य वर्णन करने के लिए नहीं है; ये तो देखने लायक हैं।

अब चढ़ाई आरम्भ होगई। हमको आज गिरगांव पहुंचना था। अभी मुश्किल से मील भर गए होंगे कि ऊंचे दूर एक बड़ा रमणीक झरना चमकता हुआ दिखाई दिया। यहां मैदान सा आ गया था। इधर उधर दृष्टि दौड़ाने से चारों ओर ऊंची पहाड़ियां मानों दीवारों की मानिन्द खड़ी बोध होती थीं। यह मैदान ठहरने लायक नहीं था इसलिये आगे बढ़े चले गए। मेरी निगाह उस जलप्रपात की ओर लगी हुई थी। कुछ मामूली चढ़ाई चढ़ने पर एक पुल दिखाई दिया। उदासी साधु तो दूसरे किनारे पर स्नान के लिये बैठ गया और मैं आगे बढ़ ।

मैंने विचार किया कि गिरगांव पहुंचकर स्नान करूंगा और वहीं उस झरने को भी देखूंगा। मगर कहां! भूख सख्त लगी हुई थी और खाने को कुछ पास में था नहीं। दो मील से ज़ियादा चढ़ाई चढ़ने पर गिरगांव की झोपड़ियां दिखाई दीं। गिरगांव क्या था? छीः! छीः!! छीः!!! घासफूस की पन्द्रह बीस झोपड़ियां। अब क्या किया जाता, उदासी भी आ पहुंचा था। बड़ी मिन्नत खुशामद से पाँच रोटियाँ मिलीं और तीनपाव छाछ। छाछ तो मैं पिया नहीं करता, सो मेरे हिस्से में अढ़ाई रोटियां ही आईं। उनको खाकर मैंने सेर भर जल पिया, तब कहीं होश ठिकाने आया। यात्री को थोड़ा सा खाना चलते समय ज़रूर साथ रखना चाहिये। मैंने बड़ी भूल की थी जिसकी काफी सज़ा मुझको मिली। मेरा असबाव शामाधुरा में रहगया था। उसी में खाने का सामान भी था। कुली अभी आया नहीं था, इसलिये यह सब कष्ट हुआ।

बारह बज चुके थे। मनस्यारी गिरगांव से बारह मील है। हम लोग दस ग्यारह मील चल चुके थे। गिरगांव में रात को ठहरने का कोई स्थान नहीं था, इस लिये यहां से चलना ही उचित समझा। दिल कड़ा कर चल पड़े। थोड़ी दूर चलकर विकट चढ़ाई शुरू होगई। जो अढ़ाई रोटी खाई थीं वे सब स्वाहा होगईं; पेशाव जो आया वह मानो रक्त था। लाल सुरख! यह क्या? मैंने सोचा कि अब क्या करना चाहिये। बढ़े चले गये। बहुत ऊंचे आगये थे, बादलों की धुन्ध में छिपगये। बड़े बड़े काले मुंह वाले लंगूर इधर उधर वृक्षों पर किलाड़ी मार रहे थे। भूखने बड़ा ज़ोर बांधा। जब चढ़ाई खतम हुई तो चित्त ठिकाने आया। यहां दो चार मिन्ट बैठकर सुस्ता लिया। आकाश बिलकुल साफ था। चढ़ाई खतम होने पर बहुत सी

झन्डियां देखने में आईं। भुटिआ लोग चढ़ाई खतम होनेपर, या पड़ाव के निकट ऐसी ऐसी झन्डिया टांग देते हैं। रंग विरंगे कपड़ों के टुकड़े वृक्षों, की शाखाओं या पत्थरों से बांध देते हैं, इससे यात्री को धोरज होजाता है।

अब उतार आरम्भ हुआ। घना जंगल, स्थान स्थान पर नाले, सुन्दर झरने, एक से एक बढ़िया, क्या कहना है। अभी हमें तीन चारमील जाना था। मुझे बेतरह भूख लगी हुई थी। एक पहाड़ी किसान अपनी स्त्री के साथ आ रहा था। मैंने उससे सत्तू मांगा। उसकी दयावती स्त्री ने फौरन तीन चार मुट्ठी सत्तू और दो आलूबुखारे के फल हमें दिये। मैंने जन्म से कभी सत्तू नहीं खाया था, आज अपनी जिन्दगी में मैंने पहिली बार उस सत्तू का स्वाद चखा, जिसके द्वारा लाखों भारतवासी पेट की ज्वाला बुझाते हैं। धन्य मेरे भाग्य जो मुझे भी अपने देश के निर्धन बच्चों का खाना नसीब हुआ। धारे पर बैठकर उसको खाया; क्या आनन्द आया। बाहरी भूख, सच्चा आनन्द तो भोजन का तेरेही अन्दर है। पेट को कुछ शान्त कर फिर बढ़े। आधमील की और विकट चढ़ाई पड़ी। सड़क महा रद्दी! झरनों तथा नालों का पानी सड़क पर बह रहा था। दूर तक सड़क भीगी हुई मिली; मच्छर और मक्खियों की भरमार है। अब बेढब उतार आरम्भ हुआ। बीच बीच में पंचाचूली की बर्फानी चोटियां भी दीख पड़ती थीं। किसी प्रकार चलते चलते, टूटे फूटे पत्थरों पर लुड़कते पुढ़कते, सड़क को ऐसी गिरी दशा में रखने वाले अधिकारियों को कोसते हुये बढ़े चले गये। मनस्यारी आगई। छः बजने वाले थे। सड़क पर कुछ लोग बड़े प्रेम से मिले। उनका मैं हृदय

से धन्यवाद करता हूं। मुझ थके हारे के स्नान का प्रबन्ध किया। ठण्डे शीतल जल से बाहिर खुले में स्नान किया; बाद में घरके अन्दर गये। मेरे प्रेमियों ने एक कमरे में मुझे ठहराया; उदासी को नीचे स्थान मिला। सामने पंचाचुली की चोटियां दिखाई देती थीं। मैंने उनको प्रणाम किया। आज हिमालय के पूर्वीद्वार के कंगूरों के दर्शन अच्छी प्रकार हुए। रात को दाल रोटी खाकर सोरहे।

२५ जून शुक्रवार—आज दिन भर आराम किया। थोड़ा समय वार्तालाप में खर्च किया। शिक्षा सम्बन्धी उपदेश कुछ भाइयों को दिया। यहां के लोग स्नान नहीं करते इस लिये उनके कपड़ों में बहुत जूएं होती हैं। मैंने उनसे कम्बल लेकर ओढ़ा, मेरे कपड़ों में भी सरसर जूएं चलने लगीं। दुपहर के बाद कुली मेरा असबाब ले आया था इसलिये अपने कपड़े झाड़झूड़ ठीककर मैंने अपनी चद्दर ओढ़ी। यहां बहुत अधिक सरदी नहीं। लोगों की पोशाक विचित्र है। एक लम्बा लबादा सा घुटनों से नीचे तक होता है; उस पर मध्य में पटका लपेटते हैं। कपड़े मैले कुचैले होते हैं। जो थोड़ा बहुत पढ़े लिखे हैं उन्होंने अंग्रेज़ी ढंग के कोट पहनने शुरू किये हैं। बाकी सब लबादा, पाजामा, पटका, टोपी पहनते हैं। लबादे के नीचे गरम कुरते फतुही आदि पहन लेते हैं। जिस किसी को देखो वही सूत कात रहा है। लट्टू सा हाथ में लिये हुये उस को घुमा घुमाकर ऊनी सूत कातते रहते हैं; छोटेसे बड़े तकका दिनभर यही काम है। बात करते जायंगे और कातना भी जारी रहेगा। सबके चेहरे मंगोलियन हैं; कोई कोई देखने में खूबसूरत भी होते हैं। यहां मक्खी मच्छरों की बहुतायत है। मैं तो घर के अन्दर ठहरा हुआ था, इस कारण कष्ट कम

हुआ। जो लोग पहाड़ी धर्मशालाओं में ठहरते हैं उनको बड़ा कष्ट होता है। पहाड़ी धर्मशालायें बड़ी गन्दी होती हैं। प्रायः साधु लोग गुफाओं में ठहरते हैं। गुफायें इधर जगह जगह होती हैं। प्रकृति माता दयाकर अपने बच्चों के ठहरने के लिये ये सब सामान कर देती है।

आज रात को उस उदासी साधु से कुछ बिगड़ गई। मेरा रूमाल, जिसमें कुछ नक़दी बन्धी थी, बिस्तरे पर से किसी ने उठा लिया। उस रूमाल को मैंने उदासी महाशय के सामने रखा था। अपना शक होजाने के कारण मैंने उस भले मानस से कहा कि ऊपर गुफा में चरलीनाथ के पास जाकर ठहर जाइये। उसे बुरा लगा। वह बड़बड़ाता चला गया।

२६ जून शनिवार—आज भी आराम किया। थोड़ा बाहर घूमने गए। मनस्यारी बेढंगा सा ग्राम है। यहाँ के पशुओं की खाल पर बड़े २ बाल होते हैं। यहां मैंने पहिली बार झब्बू देखा। झब्बू पहाड़ी गाय और तिब्बती सांड़(Yak)की सन्तति है। इसकी दुम चंवरगाय की तरह होती है। शरीर पर भी बाल होते हैं। यह लद्दू जानवर इन बर्फानी पहाड़ों में बड़ा काम देता है। बेचारा बड़ा सीधा डरपोक जानवर है। यहां की स्त्रियां जापानी स्त्रियों की तरह बच्चों को पीठ पर लादे लादे काम करती हैं। कल चलने का निश्चय होगया।

२७ जून रविवार—मनस्यारी गोरीफाटमें कई एक ग्रामों के समूह का नाम है। यहां जोहार भर का डाकघर है। पाठशाला भी है। जोहारियों के ऊपर नीचे जाने का यह अड्डा है। यहां से आज सवेरे मैं अकेला चला। मेरा असबाब मनस्यारी के एक सज्जन के पास था। वे अपनी भेड़ बकरियों के साथ पीछे पीछे आ रहे थे। दो मील के उतार के बाद मैं नीचे

पोस्टआफिस के पास पहुंचा। यहां कुछ देर ठहर कर आगे बढ़ा। उदासी और चरसीनाथ भी आ पहुंचे थे। हम लोग तीनों बढ़े चले गये। बकरियों वाले धीरे धीरे आरहे थे। अब रास्ता गोरी नदी के किनारे किनारे जाने का था। गोरी नदी की उछल कूद देखने लायक थी। पहाड़ों से भागी चली आ रही थी। ज्यों ज्यों आगे बढ़ते जाते थे गोरी नदी का रूप भयावना होता जाता था। उसीने पिता हिमालय से लड़झगड़ कर दुर्गम पर्वतों में से रास्ता काटा है। पहाड़ी सड़क खराब है। कहीं कहीं तो निहायत तंग, जहां से केवल एक मनुष्य मुश्किल से गुज़र सके और यदि कहीं पांव रपटे तो नीचे गोरी के काले पेट में समा जाय। बेढब उतार चढ़ाव हैं। पत्थरों की तंग सीढ़ियां यात्री का नाक में दम करती हैं। सैकड़ों सीढ़ियां चढ़कर ऊपर जाना, फिर सैकड़ों सीढ़ियों का उतार, सिर घुमा देता है। सड़क बेतरह खराबहै। मालूम होता है जैसे इधर किसी सभ्य गवर्नमेन्ट का राज्य नहीं है।

मैं अकेला आगे आगे जा रहा था। साथी सब पीछे धीरे धीरे आ रहे थे। एक स्थान पर पहाड़ी नाले के पास चट्टान पर शौच के लिये जो ऊपर चढा तो एक प्रकार के वन्य पौधे के पत्तों से मेरी टांगें छूगईं। जोः! मानों बिच्छू काट गया। बड़ी जलन होने लगी। यह बिच्छी घास कहलाता है। पहाड़ों में यह बहुत होती है। सूखने पर इसके रेशों की रस्सियां बनाई जाती हैं। हरी हरी पत्तियों का शाक भी लोग खाते हैं। कई जलप्रपात देखने में आए। पहाड़ी नाले गोरी की सहायता कर उसका अभिमान बढ़ा रहे थे। गोरी का रंग तो श्वेत है, पर पेट की बड़ी काली है। इसमें बकरी या झब्बू गिर जाय तो बस गया। क्रोध से जली हुई जाती है मानो

घर वालों ने पीट पाट कर निकाला है। पुलों को तोड़ मरोड़ कर फेंकना, पत्थरों को चकनाचूर कर देना, बकरी भेड़ झब्बू को डकार जाना, ये इसकी करतूतें हैं। खूब लड़ती, झगड़ती, गालियां देती जा रही है। सड़क पर चलने वाले यात्री की छाती धक धक करने लगती है। ऐसे भयानक मार्ग से ये जोहारी हरसाल कैसे जाते होंगे? यही सोचता हुआ मैं जा रहा था। परन्तु दृश्य बड़े मनोहर हैं। एक जगह गोरी ऊपर से नीचे कूदी है। वहां ऊपर चट्टानों की दरारों और सुरक्षित स्थानों पर मधुमक्खियों के सैकड़ों छत्ते देखने में आए। इन श्रमजीवी मक्खियों ने कैसा स्थान ढूंढ़ा है। मनुष्य जहां आध घंटा ठहरता हुआ डरने लगे; रात को जहां वीर मनुष्य भी डेरा करने से हिचकिचाए; उस वन्य स्थान में इन्होंने अपने घर बनाए हैं। न जाने कब से इनकी बस्ती यहां पर है। ईश्वर की माया विचित्र है।

१२ बजे के करीब एक खुले स्थान पर पहुंचे। गोरी नदी के किनारे पर यहां कुछ चौरस ज़मीन है। इर्द गिर्द दोनों ओर ऊंचे २ पहाड़ हैं। नदी ने जहां जहां पर्वतों को काटा है उसके चिन्ह देखने में आते हैं। पहले गोरी इस चौरस भूमि की ओर बहती थी और इस घाटी के बीच में से जाने का मार्ग था। भुटिए लोग ऊपर ऊपर पहाड़ों की चोटियों के निकट तक पहुंच कर, फिर भयानक उतार को पूरा कर तब पगडन्डी पकड़ते थे। बहुत ही दुर्गम पथ था। मनस्यारी के एक परोपकारी सज्जन ने अपने पास से रुपया खर्च कर बन्द बंधवा कर नदी को एक ओर करवा दिया है। अब बायें किनारे की ओर भूमि निकल आई है जहां व्यापारी आकर दम लेते हैं और भोजनादि बनाते हैं। जो प्रेमी मेरे साथ था

उसने मेरे लिये रोटी बनादी। नमकके साथ सूखी रोटी खाकर ठण्डा जल पिया और ईश्वर को धन्यवाद दिया। मुझे बैठा हुआ देख बहुत से डूमड़े मेरे इर्द गिर्द आकर खड़े हो गये। ये लोग सलाम करते हैं। मैंने उनको समझाया कि आप लोग राम राम किया करें, सलाम हमारी सभ्यता का सूचक नहीं है। वे मेरे उपदेश से बड़े प्रसन्न हुये। इन बेचारों के साथ इधर के हिन्दू बुरा सलूक करते हैं। इस लिये कइओं ने ईसाई मत की दीक्षा ले ली है।

खैर भोजन कर चल पड़े। गोरीके कई एक सहायक नाले रास्ते में मिले। उनकी बहार देखते हुये आगे बढ़े। रास्ते में बिच्छुझाड़ बहुत देखने में आया। इससे बचकर चलना पड़ता था। जरा सा छू जाने पर जलन होने लगती थी। मुझे कई बार इसने बड़ा कष्ट पहुंचाया।

पांच बज चुके थे मालूम होता था जैसे बिलकुल सन्ध्या होगई है, सामने बर्फानी चोटियों की झलक मात्र दिखाई देती थी। मैं अपने सब कपड़े पीछे छोड़ आया था, केवल एकही स्वीटर मेरे पास था। जब बागड्वार पहुंचे तो खासी सरदी हो गई। मेरे प्रेमी ने जाते ही ठहरने का प्रबन्ध किया। प्रबन्ध क्या किया? एक बड़े पत्थर के ढोंके के नीचे गुफा सी बनी हुई थी उसी में जाकर बैठ गये। चट्टान जहां ऊपर से नीचे आने में अन्दर की ओर ढलवान हो जाती है वहीं गुफा सी बन जाती है। ऐसी ही गुफा में जाकर डट गये। एक छोटी सी धर्मशाला भी यहांपर है। उसमें डूमड़ों के परिवार ठहरे हुये थे; उनके पशुओं ने धर्मशाला को गन्दा कर रक्खा था। बागड्वार को आप एक जंकशन समझिये। गोरी का एक सहायक नाला गड़ गड़ करता हुआ उसमें आकर यहां मिला है, उसी

को पार करने पर जो त्रिकोण बनता है, वहीं हम लोग ठहर गए थे। दहने हाथ गोरी और बायें हाथ पहाड़ी नाला, बीच के दोआब में बागड्वार है। यहां भुटिओं का बहुतसा माल कई दिन पड़ा रहता है। हजारों रुपये का माल रास्ते में एक ओर रखा रहता है। कोई नहीं छेड़ता, सब अपने २ रास्ते चलेजाते हैं। जिसका माल है वह उसके ऊपर एक पत्थर रख देता है बस इसीसे दूसरे व्यापारी भुटिये समझलेते हैं कि यह माल सहेजा हुआ है। कोई इसको छूता भी नहीं। मेरे प्रेमी केसर-सिंह जी ने मेरे लिये एक दो कम्बलों का प्रबन्ध कर दिया, खाने के लिए चावल और सूखी मूली की तरकारी बनादी, उसीसे कुछ पेट पूजा हुई। आज पहली बार मैंने भुटिया चाय का एक घूंट पिया। मुझे इनकी चाय बिलकुल अच्छी नहीं लगी, ये लोग अपनी चाय में चीनी की जगह नमक और दूध की जगह घी डालते हैं। इनको यही अच्छी लगती है। अपनी २ रुचि है। आठ बजे के करीब चरसीनाथ भी भूले भटके आ निकले। इनको जोंकों ने रास्ते में बेतरह सताया। बेचारे रास्ता भूलकर अबतक पहाड़ों में भटकते रहे थे। उनका भी प्रबन्ध किया गया। रात कट गई।

२८ जून सोमबार—सवेरे चल पड़े। आज रास्ता और भी दुर्गम मिला। गोरी के ऊपर बर्फ पड़ी हुई थी। नीचे गोरी नदी, ऊपर बर्फ का पुल—कैसा नवीन दृश्य देखने में आया। उस बर्फ के ऊपर, धीरे धीरे लकड़ो के सहारे चले। केसर-सिंह जी की सहायता से निकल गए। सर्दियों में तो यह घाटी बर्फ से ढकी रहती है और कोई मनुष्य, पशु मनस्यारी से मीलम आ जा नहीं सकता। जब अप्रैल के आरम्भ में बर्फ पिघलनी शुरू होती है; तो धीरे धीरे घाटी का मार्ग खुलता है।

जून के अन्त तक कहीं कहीं गहरे में बर्फ जमी रहती है। व्यापारी लोग उसी पर से होकर आते जाते हैं। कई बार ऐसा होता है कि बर्फ नीचे से नर्म होगई, किसी भुटिए ने उसको तोड़ कर रास्ता ठीक करना चाहा, पैर फिसल गया और वह बेचारा नीचे गोरी नदी में पहुंच गया। फिर उसका पता कहाँ! यही कारण मेरे धीरे धीरे जाने का था।

चलते चलाते, उतार चढ़ाव पूरा करते पांच मील निकल गए। अब तक मुझे रास्ता चलते समय बहुत पसीना होता था और मेरे कपड़े भीग जाते थे, मगर आज पसीना नहीं आया। यह तेज़ हवा की कृपा थी। बड़ा तेज़, ठण्डा वायु इन पर्वतों पर चलता है। यदि यात्री सावधान न हो तो पैर से उखाड़ कर नीचे घाटी में गिरा देता है। खैर पांच मील चल कर गोरी के एक और सहायक पहाड़ी नाले के पास पहुंचे। उस नाले का पुल बंधवाने वाले ठेकेदार के पास जाकर ठहरे। धूप निकल आई थी; आकाश निर्मल था। बर्फानी जल में स्नान किया। ठेकेदार के ब्राह्मण नौकर ने भोजन बनाया और मुझे बड़ी श्रद्धा से खिलाया।

भोजनोपरान्त आगे का रास्ता लिया। बकरी, भेड़ें ले जाते हुए भुटिए व्यापारी बराबर आते जाते हुए मिले। अब अच्छी ऊंचाई पर आगये थे। ग्यारह हजार फीट की ऊंचाई से क्या कम होंगे। चारों तरफ़ पहाड़ों की चोटियों पर थोड़ी बहुत बर्फ पड़ी हुई थी। उनमें से जल की श्वेत धाराएं निकल निकल कर गोरी नदी से मिलने के लिये उछलती कूदती जारही थीं। एक चौरस पहाड़ी मैदान में पहुंचे। यहां आटा पीसने की चक्की लगी हुई है। यहां का एक निवासी मिला जो वर्षा न होने की शिकायत कर रहा था। मुझे बड़ी

हंसी आई। इतने नाले इर्द गिर्द वह रहे हैं इन्हें इतनी बुद्धि नहीं जो नालों से जल लेकर पृथ्वी सींच लें। वर्षा के सहारे बैठे हैं। सच है मूर्ख के पांओं के नीचे चाहे खज़ाना हो पर उसको उससे कुछ लाभ नहीं। विद्वान पुरुष ही उसको खोद कर काम में ला सकता है। इसी तरह यहां के लोग हैं। इतनी चौरस भूमि में जल पहुंचाकर अनाज पैदा कर सकते हैं किन्तु उतनी इनको बुद्धि नहीं। जो कुछ बाबा आदम से चला आता है वही इनके लिए ठीक है।

इस पनचक्की वाले गांव से निकल कर आगे बढ़े। बुर्फू का गांव अब निकट ही था। पहाड़ी रास्ता घूमकर जो ऊपर चढ़े तो सामने बर्फ से लदी हुई तीन चार चोटियाँ दिखाई दीं। यही द्वारपाल हिमालय के श्वेतभवन के कंगूरे हैं। आज पहिलीबार इतने निकट से इनके दर्शन हुए। प्रभु को धन्यवाद दिया।

बुर्फू की ओर जाने वाला रास्ता बहुत खराब है। कच्चा पहाड़ है; बर्फ ने इसको चूर चूर कर दिया है। जैसे किसी पहाड़ी चट्टान के नीचे बारूद लगा देने से उसके भाग छिन्न भिन्न होजाते हैं यही दशा यहां मैंने देखी। रास्तेकी यह दशा, कि यदि एक छोटा सा पत्थर फिसल पड़े तो पाओं के नीचे की बजरी निकल निकल कर नीचे बही चली जाती है और प्राण बचाना कठिन हो जाता है। आप पूछेंगे कि यह रास्ता पक्का नहीं है? पक्का कैसे हो। जब शीतकाल में इर्द गिर्द के पहाड़ बर्फ से ढक जाते हैं और यह घाटी भी हिमसे सफेद हो जाती है तो बर्फ इन पहाड़ों के साथ बड़ी निर्दयता का व्यवहार करती है। जैसे सांप किसी पशु को अपनी लंबी देह से फांस कर उसको जकड़ लेता है और पशु की हड्डियां

तोड़ डालता है, इसी प्रकार यह हिम भी करती है। वर्षा ऋतु में पानी पर्वतों के छिद्रों में भर जाता है। अक्तूबरमें वर्फ पड़ने लगती है। नवम्बर, दिसम्बर, जनवरी और फरवरी —इन चार महीनों के कड़कड़ाते जाड़े में—उन छिद्रों का जल, वर्फ बनकर अपना आकार बढ़ाता है। वे छिद्र फट जाते हैं; उनकी सङ्गठन शक्ति जाती रहती है; वे अलग अलग हो जाते हैं। मार्च अप्रैल में जब वर्फ पिघलती है तो बड़े बड़े वर्फ के ढोंके चोटिओं से खिसकते हैं, वे अपने जगह से चलते हैं। किस की शक्ति है जो उनका रास्ता रोक सके। सब को पीसते हुए, बड़ी गर्जना करते हुए वे नीचे घाटी में आते हैं। सड़क के पत्थरों और नदिओं के पुलों को तोड़ते हुए गोरी में पहुंचते हैं। भला इनके आगे सड़क क्या ठहर सकती है वे उसको हड्डी पसली तोड़ देते हैं। हर साल सड़क की मरम्मत हो, तब काम चलता है। इन बेचारे भुटिओं को यह सब सहना पड़ता है।

शाम को वुर्फु पहुंच गये। गोरी नदी का पुल पारकर, मील भर की चढ़ाई चढ़ कर गाओंमें पहुंचे। वुर्फु पुराना ग्राम है। दो सौ घरों की बस्ती होगी। यहां आजकल सब घर भरे थे। मनस्यारी तथा उसके इरद गिरद गोरीफाट के ग्रामों के लोग अपने परिवारों सहित गरमियों में मल्लाजोहार में आजाते हैं, स्कूल भी इन दिनोंमें खुल जाता है। छोटे छोटे फुर्तीले भुटिया लड़कियां लड़के इधर उधर खेल कूद रहे थे। मैं धर्मशाला में जाकर ठहरा। यहां भी मेरे आनेकी खबर थी, इसलिये सब प्रबन्ध होगया। लोग मिलने के लिये आए। उनको जुए की बुराइयां, सदाचार की महिमा तथा शराब के दोष समझाए। हाथ, पैर, मुंह धोकर परमात्मा की प्रार्थना

की, तदुपरान्त पांच चार कम्बल ओढ़कर सो गये।

२९ जून मंगलवार—रात जूओं के मारे बड़ी कठिनाई से कटी। इन भुटिओं के कपड़ों में बहुत जुएं होती हैं। ये लोग स्नान कम करते हैं और सफाई पर विशेष ध्यान नहीं देते, इसलिये इनके कपड़ों में कृमि पड़ जाते हैं। जो कम्बल मैंने इन लोगों से लिए थे उनमें 'सर सर' जुएं चलतीं थीं। क्या किया जाता, किसी प्रकार रात बिताई।

सात बजे सवेरे एक डूमड़े का लड़का पथप्रदर्शक के तौर पर साथ हो लिया। रास्ते से अनभिज्ञ होने के कारण उसकी ज़रूरत थी। केसरसिंह मेरे साथ बुर्फु नहीं आये थे,वे मीलम पहुंच गये। रास्ते से भलीप्रकार परिचित होने के कारण उन्होंने संध्या को ही अपना मार्ग तै कर लिया और अपने घर में जाकर आराम से सोए।

मैं उस डूमड़े के छोकरे के साथ होलिया। आज गोरी के दहिने किनारे चले। किनारे से यह मत समझिये कि बिलकुल किनारे ही, गोरी से कमसे कम चारसौ फीट की ऊंचाई पर की पगडन्डी पर जा रहे थे। दो मील पर बिलजू नाम का ग्राम है। वहां पहुंचे। औरतें पहाड़ी नदी से तांबे के मटकों में पानी भर भर कर अपने घरों को ले जा रही थीं। छोटे २ लड़के गलिओं में खड़े मुझे देख रहे थे। उनकी भोली भाली मंगोली सूरत, पुष्ट हाथ पैर, गठीला बदन चित्त को प्रसन्न करता था। मैंने सोचा-'कैसी अच्छी सामग्री यहां पर देश भक्तों के लिये है। इन पर्वतों पर से क्या क्या काम नहीं हो सकते। थोड़ी जागृति चाहिये। यही बालक कट्टर देशभक्तबन कर माता का दुख दूर कर सकते हैं"। मन के साथ इस प्रकार की बातें करता हुआ चला। आगे बढ़कर नन्दा देवी के

भव्यदर्शन हुये । एक रास्ता नन्दाकोट को बायें हाथ की ओर से गढ़वाल जाता है । उसी रास्ते में ठीक सामने, आकाश से बातें करती हुई, सफेद चमकती हुई दो चोटियां दिखाई देती हैं। मीलम जानेवाली पगडण्डी से ये दोनों चोटियां बिलकुल पास मालूम होती हैं। इन दिनों आकाश निर्मल रहता है। नीले आकाश में, उन्नत मुख किये, नन्दादेवी साभिमान खड़ी है । बायें ओर 'बनकटा' नाम की चोटी है, उसकी आकृति कुल्हाड़े जैसे होने से उसका ऐसा नाम पड़ गया है । मैं उस चोटी का नाम परशुराम रखता हूं ।

नन्दा देवी को प्रणाम करने के बाद मैंने परशुराम जीको नमस्कार किया और उनकी शोभा देखी। कई एक विकट स्थानों को कूदते फांदते एक पुल के पास पहुंचे । यह पुल गोरी की सहायक नदी बखा पर बंधा है। इसको देखने से भी डर लगता है; बड़ी बिगड़ी हुई नदी है। इसके कमजोर पुल पर डरते डरते पाँव रक्खा । पार करनेके बाद ईश्वरको धन्यवाद दिया। अब मीलम के मैदान में पहुंच गये। सामने पर्वत के नीचे घाटी में पत्थरों के मकान दिखाई देते थे। उनकी तरफ बढ़े। खिलखिलाती धूप बड़ा सुख देरही थी। सूर्यदेव हंसहंस कर घाटी में प्रकाश डाल प्रकृतिका सौन्दर्य बढ़ाते थे। सामने पर्वतों पर बर्फ पड़ी थी। कुछ दूर उत्तर पश्चिम में बर्फसे लदी हुई चोटियां अपनी अनोखी छटा दिखा रही थीं। कहना क्या, चारों ओर बर्फानी चोटियों से घिरे हुये इस मीलम ग्राम में मैंने प्रवेश किया। भारतवर्ष का इस ओर यह अन्तिम ग्राम है, इसके आगे हिमालय का श्वेतभवन है, जिसको लांघकर तिब्बत जाना पड़ता है। आइये पाठक,मीलम घाटीमें प्रवेश करें और पूज्य हिमालय के श्वेत भवन में जानेकी तय्यारियां करें।

मीलम तीन सौ घरों का ग्राम है। सब मकान पत्थर के हैं। जब मैंने ग्राम में प्रवेश किया तो नौ बजने वाले थे। डूमड़े के छोरे को मैंने वापिस बुर्फू भेज दिया। भुटिश्रा लोग मुझे बड़े प्रेम से मिले। केसरसिंह जी भी यहां मौजूद थे। उन्होंने रायबहादुर कृष्णसिंह जी के मकान में मेरे ठहरने का प्रबन्ध कर दिया। रायबहादुर साहब बड़े सज्जन पुरुष हैं। वे संसार के उन साहसी पुरुषों में से हैं जो अपनी जान को हथेली पर रख कर मनुष्य मात्रके लाभ के लिये पृथिवी के कठिन भागों की खोज करते हैं। उन्होंने तिब्बत में घूम घूम कर वहां के नकशे तय्यार किये हैं। यदि वे किसी यूरोपियन देश में उत्पन्न होते तो सारा सभ्य संसार उनके गुणों से परिचित होता। और वे एक प्रसिद्ध Explorer अन्वेषक माने जाते। मैं उनके विषय में अधिक आगे चलकर लिखूंगा।

गोरी नदी के किनारे मुझे ठहरने को स्थान मिला। कई एक विद्यार्थी आकर इकट्ठे होगये। उन्होंने मकान झाड़ने बुहारने में सहायता दी। दो जने मेरे साथ गोरी पर गये। बर्फ के टुकडे नदी में बहे आरहे थे। कैसा ठण्डा जल होगा, पाठक अनुमान कर सकते हैं। उस जल से मैंने स्नान किया और अपनी थकावट मिटाई। नहा धोकर अपने मकान पर आये और भोजन किया।

कैसा अच्छा स्थान है। आजकल तो यहां आनन्द है, मक्खी, मच्छर 'खटमल' विच्छू कुछ नहीं। खिलखिलाती धूपमें बाहर घास पर चटाई बिछाकर मैं लेट गया। धूप कैसी अच्छी मालूम होती थी। इस जून के महीने में यहां पूष माघ से अधिक सरदी पड़ती है; खाने का खूब मज़ा आता है। ऊंचाई बारह हजार फीट से अधिक है इस लिये वृक्षोंका यहां अभाव

ही है; हां घास होता है। सामने पहाड़ों पर झाड़ियों जैसे सरु का जंगल दिखलाई देता था। सरदी के मारे वनस्पति भी अपनी माता पृथ्वी के गर्भ में घुसी पड़ती है। आनन्द है, आनन्द है; धूपका खूब आनन्द लूटा। शाम होगई। भोजनोपरान्त सो गये।

२०जून से ११ जौलाई रविवार तक-ग्यारह बारह दिन मीलम में रहे। खूब घूमे। गोरी नदी का बर्फानी पहाड़ (ग्लेशियर) पासही है। एक दिन सवेरे, मैं अपने स्नेही श्रीखड्ग रायजी के साथ गोरी नदी के किनारे किनारे उसका ग्लेशियर देखने गया। मेरे स्थान से यह बर्फ का पहाड़ सवा मील पर होगा। घूमते २ चले गये। सामने ऊंची काली काली पहाड़ी के बीच में से गोरी आरही थी। जैसे पर्वत काटकर बड़ी बड़ी सुरंगे रेल जाने के लिये बनाई जाती हैं, ऐसी ही सुरंग के सामने हम दोनों पहुंच गये। बर्फ पर चढ़ना शुरू किया। बर्फ का पहाड़ काला क्यों? कारण यह था कि इर्द गिर्द के पहाड़ों पर से फिसलकर आने में बर्फ अपने साथ बहुतसे पत्थर मिट्टी ले आती है, बर्फ तो पिघलकर नीचे नदी में जा रही है, मिट्टी पत्थर बेचारे अपनी भोंड़ी सूरत में ऊपर रहजाते हैं। यही उस पहाड़ का कालापन है। नीचे ठोस, सफेद बर्फ जमी हुई है। कई नाले ऊपर पर्वतों से भाग भाग कर इसमें मिल रहे थे। उनकी भी सुरंगें बनी हुई थीं जिन में यदि कोई गिरजाये तो फिर जीता निकलना असंभव है। इधर उधर घूम कर इस निर्जन पर्वत को देखा। मालूम होता है कि यह ग्लेशियर बहुत बड़ा था। मीलम वासी भुटिए भी यही कहते हैं कि यह ग्लेशियर मीलम के बिल्कुल पास था। धीरे २ बर्फ पिघली जा रही है और ग्लेशियर पीछे हट रहा है। बर्फ के चिन्ह पहाड़ों पर बने हुये हैं, नीचे नीचे हटने की

लकीरें साफ दिखाई देती हैं।

दो घंटा इधर उधर घूमकर मैं अपने प्रेमी के साथ लौट आया। रास्ते में एक चरवाहा भेड़ें चराता हुआ मिला। इधर इन पहाड़ों पर उसी जंगली झाड़ियों को खाकर भेड़ें और बकरी खूब मोटे होते हैं। मैंने उस चरवाहे से यह सब बातें पूछी। यद्यपि वह बिल्कुल अशिक्षित था पर बातें समझ की करता था। शिक्षा फैलने से ये लोग भी अच्छे चतुर हो सकते हैं।

गोरी मीलम के उत्तर पश्चिम गढ़वाल की तरफ सेआती हैं। गढ़वाल और अल्मोड़ा की सीमा बर्फानी चोटिओं से घिरी है। मीलम के पश्चिम गढ़वाल की तरफ नन्दादेवी २५८५० फीट ऊंची आकाश से बातें कर रही है। उसकी पंद्रह सखियां ऐसी हैं जो प्रत्येक बीस हज़ार फीट से अधिक ऊंची हैं। नन्दादेवी के दक्षिण की ओर त्रिशूल की तीन ऊंची चोटियाँ हैं; जो २३००० फीटसे भी अधिक ऊंची हैं, दक्षिण पूर्व की तरफ नन्दाकोट २२६५० फीट ऊंचा अपना जोबन दिखा रहा है। इस प्रकार मीलम के पास हिमालय के श्वेत भवन के कई एक प्रसिद्ध कंगूरे हैं। गोरी की गड़गड़ चौबीस घंटों रहती है, और उसी के द्वारा दो तीन, पनचक्कियां आटा पीस पीस कर मीलमवालों की सेवा कर रही हैं। लोग इसी गोरी का मैला पानी पीते हैं और इसे बड़ा गुणकारी बतलाते हैं। घाटी के बीच एक तरफ उत्तर पूर्व की ओर ग्राम बसा है। दक्षिण की ओर पहाड़ के नीचे गोरी बहती है। दो मील दक्षिण की ओर नदी के किनारे पांच ग्राम और हैं। तीन मील पूर्व की ओर बिलजू ग्राम है। यहां मीलम में लन्दन मिशन की ओर से पादरी, भुटिये व्यापारियों के साथ साथ जून में

ऊपर आजाते हैं, और सेपटेम्बर में नीचे चले जाते हैं। इनका एक बड़ा अच्छा बंगला बना है। कामइन बेचारों का अब ढीला होगया है कहते हैं पहले इनका अच्छा ज़ोर था। जब कुछ वर्षों परिश्रम करने के बाद कुछ विशेष परिणाम न निकला तो लाचार होकर मिशन ने ख़र्च कम करदिया, अब साधारण तौर पर कार्य होता है। जो मिशनरी आजकल यहां हैं वे सज्जन पुरुष हैं। मेरे साथ उन्होंने बहुत अच्छा सलूक किया।

मीलम के उत्तर से वक्खा नदी आकर गोरी से मिली है और एक नदी नन्दादेवी से निकल कर गोरी की सहायक बनी है। यहां कोई अच्छी दुकान नहीं, सब नीचे से अपने २ काम के लिये रसद सामान लाते हैं। कई कई महीनों का सामान साथ रखना पड़ता है। भाजी तरकारी सुखाई हुई साथ रखते हैं। औरतें बड़ी मज़बूत और मेहनती हैं, गोरी नदी से पानी भर कर लाती हैं और घर का सारा काम बड़े सुचारु रूप से करती हैं।

मैंने यहां पर व्याख्यान दिए, शिक्षा की उपयोगिता तथा असली धर्म के सिद्धान्तों को समझाया। लोग बड़े प्रसन्न हुये यहां कई एक पहाड़ी यात्री आकर इकट्ठे होगये थे। भुटिए लोगोंने इनकी यथाशक्ति सहायताकी। पांचचार साधुभी नीचे मैदान से यात्रा के लिये आ गये थे, उनको, भी इन लोगों ने कम्बल दिये, गुड़ सत्तू का भी प्रबन्ध कर दिया। मुझे भी कपड़ों की ज़रूरत थी क्योंकि मैं अपने साथ बहुत कम कपड़ा लाया था। श्री विजयसिंह पांगटी बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं। उनके भाई भी बड़े योग्य व्यक्ति हैं। उन्होंने तथा प्रेमी खड्गराय जीने मिलकर मेरे लिये सब प्रबंध कर दिया। एक अच्छा गरम कश्मीरे का ओवरकोट बनवाया। श्री खुशहाल सिंह बूढ़ा

और श्री दीपसिंह ने भी हाथ बटाया। मुझे जो सामान दरकार था उसका प्रबंध इन भुटिये सज्जनों ने प्रसन्नता पूर्वक कर दिया, जिसके लिये मैं इन भाइयों का बड़ा कृतज्ञ हूं। यदि ये लोग हाथ न बटाते तो मेरी तिब्बतयात्रा कुशल पूर्वक कभी नहीं हो सक्ती थी।

ग्यारह बारह दिन मीलम में रहकर अपनी विकट यात्रा की तय्यारियां करते रहे। भुटिए लोग भी अपने माल असबाव लादने की झोलियां सीने तथा अपने परिवार के लिये तीन महीने का सामान जुटाने में लगे थे। तिब्बत की यात्रा करना मानो यमलोक जाकर लौटना है। उसके लिये पूरा सामान करना पड़ता है; जंगल से लकड़ी काट काट कर इकट्ठी करनी पडती है, क्योंकि जब भुटिये व्यापारी तिब्बत चले जाते हैं तो मीलम में सिवाय उनकी स्त्री बच्चों के और कोई नहीं रह जाता। कोई बीमार बुड्ढा भलाही रह जाय, नहीं तो प्रायः सभी पुरुष व्यापार करने जाते हैं। तिब्बत से कई हुणिए हिमालय पार कर अपनी भेड़ें मीलम में ले आते हैं और उनकी ऊन बेचकर अनाज और कपड़ा ले जाते हैं। ये लोग अपने अपने व्यापारी के यहां जाते हैं और कोई भुटिया व्यापारी किसी दूसरे तिब्बती व्यापारी को बहका कर अपनी ओर लाने का यत्न नहीं करता; अपनी मरज़ी से कोई किसी को छोड़दे, यह दूसरी बात है। इनके व्यापार के नियम बंधे हैं। मेरे सामने दो चार तिब्बती सैकड़ों भेड़ों को लिये हुये आये थे। इनकी भेड़ें बड़ी फुरतीली और चंचल होती हैं। हुणिये खाल के लम्बे २ वस्त्र पहनते हैं। कमर बधी रहती है। ये लोग महागन्दे और भयानक आकार के होते हैं। सिर नंगे, चीनिओं की तरह लंबी चोन्दी लटकाये रहते हैं। मज़बूत लम्बे २ सन अथवा चमड़े

के जूते पहनते हैं, गालों पर हिमालय की काटने वाली ठण्डी हवा से बचने के लिये एक प्रकार की औषधि लगाते हैं। जिन राक्षसों का वर्णन रामायण में पढ़ा करते थे, ठीक वैसेही ये लोग देखने में आये। गन्दगी से इनको किसी प्रकार की घृणा नहीं। रात को खुले में आकाश के नीचे ये लोग अपनी भेड़ों के बीच में मिट्टी पर ही सो रहते हैं। इनका रहन सहन, रङ्ग ढंग, चालढाल आदि का वर्णन आगे चलकर करूंगा, क्योंकि इनके देश में तो पहुंचना ही है।

इधर का राज्य प्रबन्ध पटवारी के हाथ में है, जिसको सब प्रकार के अधिकार रहते हैं। पोस्ट आफिस मनस्यारी में है, पर भुटिए व्यापारिओं के मीलम आजाने पर एक डाकिया बराबर मनस्यारी से मीलम और मीलम से मनस्यारी डाक पहुंचाता है। सप्ताह में दो बार डाक आजाती है। पोस्ट आफिस का प्रबन्ध बड़ा अच्छा है, किन्तु डाककर्मचारियों की तनख्वाह बहुत थोड़ी है। डाक बांटने वाले बेचारे इन विकट पर्वतों को लांघकर डाक पहुंचाते हैं—वर्षा हो या अन्धेरी—इनके लिए सब बराबर है, तिस पर भी सात आठ रुपये ही इनके लिए बहुत काफी समझे जाते हैं। कम से कम बारह रुपए महीने से इनकी तनख्वाह प्रारम्भ होनी चाहिए, और बराबर तीसरे वर्ष तरक्की मिलनी उचित है।

एक दिन मैं अपने दो प्रेमिओं के साथ फिर नन्दा देवी देखने गया। दस बजे के बाद हम लोग अपने स्थानों से चले होंगे। मीलम के पास गोरी के पुल को पार कर रास्ता जाता है। नदी के किनारे किनारे बातें करते हुए चले गए। बिलजू से मीलम आने में जिधर नन्दादेवी जाने का रास्ता देखा था उधरही आज जाना था। नन्दादेवी के ग्लेशियर से एक

नदी निकलकर गोरी से मिलती है; उस संगम पर एक ग्राम वसा है,वहां पहुंचे। ग्रामवालों से प्रेमपूर्वक वार्तालाप किया। यहां से पहाड़ी पथप्रदर्शक को साथ ले नदी पारकर, पहाड़ पर चढ़ना शुरू किया। अभी बहुत दूर नहीं गए थे कि थकान लगने लगी;ज़रा दस क़दम जाते,झट दम फूलने लगता था। हिम्मत कर थोड़ी दूर और बढ़े तो विष चढ़ने लगा। इधर हलाहल विष का पौधा होता है, उसकी गन्ध से विष चढ़ जाता है। एक ऊंचे करारे पर बैठ गए। सामने नन्दा देवी बादलों से ढकी थी; आज आकाश में कुछ कुछ बादल थे। आध घंटा उस करारे पर इस आशा में बैठे रहे कि नन्दा देवी शीघ्र अपने आमोद प्रमोद से छुट्टी पाजाए तो हमें उससे वार्तालाप करने का अवसर मिले, किन्तु ऐसा न हुआ। निराश होकर हम लोग लौट पड़े। रास्ते में भोजपत्र का पेड़ देखा। उसकी छाल कागज़ की तरह होती है, और एक परत पर दूसरी परत निकलती चली आती है। ग्राम के निकट घाटी में खेतों को देखते हुए मीलम की ओर चले। दोपहर के करीब थके हारे घर पहुंचे।

मीलम में दो स्कूल हैं—एक तो मिशनवालों का है दूसरा सरकारी है। शिक्षा का धीरे धीरे प्रचार हो रहा है। शिक्षा के प्रचार से इन लोगों में जागृति भी होरही है। हिन्दी के समाचार पत्र, वंगवासी आदि, आते हैं। अंग्रेज़ी के समाचार-पत्रों के पढ़नेवाले भी होते जाते हैं। आर्यसमाज के सिद्धान्तों का भी थोड़ा बहुत प्रचार इधर भोट में धीरे धीरे होरहा है। तात्पर्य यह है कि प्रबुद्ध भारत के मधुर राग की ध्वनि इन पहाड़ों में भी सुनाई देने लगी है। क्यों न हो, बेतार का तार तो हिमालय के श्वेतभवन में लगाही है।

१२ जौलाई रविवार—आज मीलम से चलने की तय्यारी थी। दूसरे पहाड़ी यात्री और साधु तो मुझसे पहलेही चल दिए थे। कैलाश जानेवाला यात्री स्वयं अकेला हिमालय पार कर तिब्बत नहीं जा सकता, उसको भुटिओं के साथ जाना आवश्यक है। प्रथम तो कोई ख़ास रास्ता उधर जाने का बना हुआ नहीं, यदि रास्ता हो भी तो अकेला यात्री उन बर्फानी पर्वतों को पार करने के सर्वथा असमर्थ है। भूटिए व्यापारी भी मिलकर चलते हैं; उनको भी अकेले में अपने प्राणों का भय रहता है। जौलाई के आरम्भ से दो चार व्यापारी रोज़ अपनी भेड़ बकरी लादे हुए उत्तर की ओर मुंह करते हैं। यात्री लोग भी अपनी अपनी सुविधानुसार इनके साथ हो लेते हैं। जिस किसी के साथ जिसका समझौता होजाता है वह उसीके साथ चल देता है। मुझे विजयसिंहजी पांगटी के साथ जाना था; उन्होंने बारह जौलाई अपने जाने की तिथि निश्चित की थी, इस कारण मुझे भी तब तक ठहरना पड़ा।

आइए पाठक, मनस्यारीसे मीलमऔर मीलमसे ऊंटाधुरा की ओरएक दृष्टि डालें। गोरी के किनारे२कैसे कठिन रास्तों से हम लोग आये हैं। चीड़,आगर, सुराही,बांझ आदि पेड़ोंको देखते हुये, जलके प्रपातों का आनन्द लेते हुये, मीलम में पहुंचे थे। वहांसे गढ़वाल यद्यपि बिलकुल निकट है पर उधरजाना कैसा कठिन है। मीलम से गढ़वाल जाना मानो मौत का सामना करना हैं। एक ओर गढ़वाल की सीमा के दुर्गम पर्वत, दूसरी ओर पंचाचूली की पर्वत माला,सिर पर,उत्तर में कुङ्गरी-बिङ्गरी आदि चोटियाँ, दक्षिण में गोरीनदी की भयानक घाटी, इस प्रकार मीलमके इर्द गिर्द प्रकृतिने कैसी अभेद्य दीवारें खड़ी की हैं, और उसको चारों ओर से सुरक्षित किया है। वर्ष में

सात महीने तो कोई किसी प्रकार भी इसमें घुस नहीं सकता। सूर्य देव की कृपा से इधर जोहार में केला, नीबू, नारंगी आदि फल और धान, मड़वा, जौ गेहूं, बासमती, बीनस, ऊगल, मूली, फाफर, आलू आदि अनाज और सब्ज़ी भी पैदा होती है, जिनसे भुटिओं का पालन होता है। घाटीमें आलू ज़ियादा होता है। मीलम के पास गोरी नदी के तल से दो मील के फासले पर शांडिल्य ऋषि का कुण्ड है। वहां जन्माष्टमी के रोज़ बड़ा मेला लगता है। इर्द गिर्द के ग्रामों से पहाड़ी औरतें वहां बहुत जाती हैं।

आखिर चलने की घड़ी आगई। विजयसिंह जी ने अपने सम्बन्धियों से मिलने मिलाने में देर करदी। हिमालय पार जाकर लौटना, इन लोगों के लिये ऐसा ही है, जैसा कि मृत्यु लोक से वापिस आना। मैं सुना करता था कि रेल होने से पहले हरिद्वार, काशी, गया आदि तीर्थों पर जाने वाले यात्री अपने घरवालों से विदा होते समय यह सोचा करते थे— "देखिये तीर्थयात्रा कर जीते घर लौटते हैं या नहीं"—इसका दृश्य मैंने यहां पर देखा। अपने घरवालों से जुदा होते समय भुटिए लोगों के चित्त में भी यही भाव रहता है। मैं तो मिशनवालों का बंगला देखने चला गया और विजयसिंह जी अपने घरवालों को समझाने बुझाने में लगे रहे।

ग्यारह बजे के बाद ठीक तैय्यारी हुई। विजयसिंह जी की खच्चरें और उनके आदमी आगे बढ़गये। मैं और पांगटी जी इकट्ठे चले। अब हमको वक्खा के किनारेकिनारे जाना था। वक्खा नदी गोरी की छोटी बहिन है। इसके ऊपर दोनों ओर जो पहाड़ियां हैं वे गिद्धों की तरह हम लोगों की ओर देख रही थीं। लंबी २ गरदनों वाली ये पहाड़ियां मानो अब ऊपर

झपटना ही चाहती हैं, जरा सा कहीं से कोई पत्थर का टुकड़ा हिला, बस फिर इनकी कतार चली; धां! धां!! की आवाज़ से कलेजा कांप उठता है। बक्खा नदी की भूख को यही पहाड़ियां मिटाती हैं। मुझे तो यह रास्ता बड़ा भोंड़ा मालूम हुआ। ऊपर दृष्टि डालने से ठूंठ के ठूंठ दिखाई देते थे। ये सब मायावी राक्षसों के विहार का फल है। जहां कहीं वे अपनी श्वेत पादुका पहिनकर विसर्पण Skating करने के लिये निकलते हैं वहाँ ठूंठ हा ठूंठ रहजाता है।

बक्खा नदी पर कई जगह बर्फ का पुल देखने में आया। विजयसिंह जी एक खच्चर मेरी सवारी के लिये लाये थे। उसका प्रबन्ध रायबहादुर कृष्णसिंह जी ने कर दिया था। आसान रास्ते में जहां गिरने का डर कम रहता, वहां मैं खच्चर की सवारी कर लेता था। बेढ़ंगे, कच्चे, बे सिर पैरकी जगहों में मैं पैदल चलता था। इस प्रकार बड़ी कठिनाई से पांचमील पूरे किये. और बक्खाका बर्फानी पुल पारकर दूसरे किनारे ऊंची पहाडीपर चढ़गये। यहां कुछ चौरस भूमि आगई थी। आज यहीं ठहरने का निश्चय किया। तम्बू खड़ेकर दिये और बिस्तरे लगा बैठ गये; और भी कई एक डेरे यहां पड़े थे। यद्यपि काफी ऊंचाई पर आगये थे, परन्तु हिमालय का श्वेत भवन अभी यहां से कुछ मील दूर था। रात को भोजन कर आनन्द से सो रहे।

१३ जोलाई मंगलवार—आज दिन भर यहीं रहे। बादल घिर आये थे। वर्षा होती रही। विजयसिंहजी के पास आंधी, शीत, वर्षा, ओले सभी से बचने का आवश्यक सामान था। नौकर भी उनके साथ थे। दिनभर पाल में बैठे रहे। रात को उपदेश हुआ।

१४ जौलाई बुधवार—आज पूज्य हिमालय के श्वेतभवन में प्रवेश करने का दिन था। प्रवेश-टिकट मिल गये थे। दिन भी निर्मल था। सवेरे सूर्योदय से पहले ही चल पड़े। मैंने ओवरकोट और मोटा गरम पाजामा पहन लिया; सिर पर कानपुरी ऊनी कनटोप ओढ़ लिया, खूब तैयार होकर खच्चर पर चढ़ बैठा। सब लोग चल पड़े।

पहले दुङ्ग पहुंचे। यहाँ पर ऐसा मालूम हुआ मानो बड़े सुदृढ़ किले की दीवारों के नीचे खड़े हैं। उन दीवारों के बीच में से वक्खा नदी आरही थीं। इसके दहिने किनारे हो लिये। श्वेतभवन की चार दीवारी को पार किया। अब भवन की सीढ़ियां चढ़ते हैं। ऊपर २ चले जारहे हैं। खच्चर थक जाता है तो उस परसे उतर कर पैदल चलता हूं। थक गया; ज़रासी देर में ? हाँ, यह हिमालय है। वक्खा नदी के ग्लेशियर पर चढ़ रहे हैं। श्वेत, श्वेत, श्वेत हिम दोनों तरफ! और आगे बढ़े। गल (बर्फानी पहाड़) यहां फटा हुआ है, उसमें से नदी बह रही है। उसके किनारे २ बर्फ में खच्चर पर चढ़ा हुआ मैं जारहा था। सामने श्वेतभवन का प्रथम द्वार है। आहा ! धन्य मेरे भाग्य!! अपूर्व शोभा, विचित्र चमत्कार !!! नीले, काले, सुरमई, मटियेले पर्वतों पर प्रणयोन्मत्ता हिम नाच रही थी। यह क्यों ? उसके पति भगवान भास्कर आठ महीने के बाद घर आये हैं। इसकी प्रसन्नता का यही कारण है, इसी-लिये श्वेतभवन में आजकल आनन्द मंगल है। पति के पद-पंकजों का स्पर्श करके किस आनन्द से यह नेत्रों से मुक्ता-फल गिरा रही है। क्या कहना, विरहिणी हो तो ऐसी हो !

फिर बढ़े। गल के ऊपर ऊपर चले; बर्फ में पाओं धंसते हैं। ऊंटाधुरा घाटी (Pass) के पास पहुंच गये। सामने ऊंटा-

धुरा है, पीछे की ओर बड़ा ग्लेशियर; दस मिनट ठहर कर इस १७५९० फीट ऊंचे घाटेपर चढ़ना शुरु किया। धीरे धीरे, एक एक कदम चढ़कर खच्चरें थक जाती हैं; भेड़ें दम लेने लगती हैं: बकरियां सिर नीचा किए खड़ी हो जाती हैं। चले; धीरे २ एक कदम, दो कदम, तीन कदम, फिर रुक गये; दम फूलता है; सिर कुछ दर्द करने लगता है : प्यास लग गई है। विजयसिंह जी पानी पीने नहीं देते, कहते हैं पानीयहां का अच्छा नहीं। तिब्वती किशमिश मुंह में डालता हूं। फिर दस कदम बढ़ा, लाठी के सहारे सिर झुकाये खड़ा हूं। चढ़ाई बिलकुल सीधी है। ऐसी विकट चढ़ाई पूज्य हिमालय के श्वेतभवन की क्यों है? यह भारत माता का रक्षक है। इसने अपने दुर्ग को ऐसा दृढ़ किया हुआ है कि कोई भारत का शत्रु भारत में प्रवेश न कर सके, और यदि छल पूर्वक प्रवेश कर जाय तो जीता बाहर न जा सके। वाहरे द्वारपाल, तुम धन्य हो!—

ऊंटाधुरा की चोटीपर पहुंच गए। अपूर्व नैसर्गिक छटा! श्वेतभवन के पुनीत दर्शन!! भगवान भास्कर के चरणों से लिपटी हुई श्वेताङ्गना बाला पति के पाओं की रज को अपने आंसुओं से धो रही है। वे उसे प्रेम से आलिङ्गन कर अपना अपराध क्षमा करवा रहे हैं, और नीले, पीले, बैंजनी, सुनहले रेशमी वस्त्रों को अपनी प्यारी के अङ्गों पर डाल उसके सौन्दर्य को बढ़ा रहे हैं। पति का अविरल प्रेम देखकर पुलकित अंगों से वह उनके पाओं चूमती है और हाथ जोड़ यह प्रार्थना करती है—

"इस बार यह दासी आपके पदों का ध्यान करती हुई साथ जायगी; जंगल, मैदान में आपकी सेवाकर आनन्द सुख लाभ करेगी।"

उसकी प्रार्थना स्वीकृत होगई । हमें भी उसकी प्रसन्नता से बड़ा सुख मिला । ऊंटा धुरा के नीचे उतरे । नीचे उतरने में पौन मील हिम ही हिम पर चलना पड़ा । किसी प्रकार नीचे उतरे; पहला घाटा निकल गया ।

दस मिनट ठहरकर फिर दूसरे पहाड़ पर चढ़ना आरंभ किया । यह १७००० फीट ऊंचा है, इसका नाम जयन्ती है । इस पर की सारी बर्फ पिघल गई थी, इसलिए इसको पार करने में कुछ भी कठिनाई नहीं हुई । उतार में एक बड़ा ग्लेशियर मिला । इर्द गिर्द भी गल ही गल दिखाई देते थे, जिनमें से नदियां निकल निकल कर न जाने कहां जा रही थीं । जयन्ती भी पार कर लिया ।

सब से अन्तिम द्वार श्वेतभवन का कुङ्गरी बिङ्गरी है । इसकी ऊंचाई १८३०० फीट है । सामने, ऊंचे, दूर, गढ़ की तरह कुङ्गरी बिङ्गरी का घाटा दिखाई देता था । कई एक घुमाव फिराव के बाद ग्लेशियर से ऊंचे उठे । मैं खच्चर पर सवार था । विजयसिंह जी भी अपने खच्चर पर सवार थे; उनके नौकर हंसते चले आ रहे थे; उनको किसी प्रकार का कष्ट चढ़ाई में मालूम नहीं होता था । उनके लिए यह साधारण यात्रा थी । यह सब अभ्यास का फल है ।

ग्लेशियर से ऊपर उठने के बाद बिलकुल सीधे चढ़ाई पर जाना था । पशु बेचारे भी थक गए । मेरी जेब में जो तिब्बती किसमिस थी वह मैंने अपनी खच्चर को खिला दी । चार बज चुके थे । रवि की किरणें पर्वतों पर पड़ी हुई धुन्ध में से छन कर आरही थीं । ऐसा प्रतीत होता था मानो सूर्यदेव के हृदय पट पर वैराग्य का श्वेत आवरण छा गया है और उनका ध्यान अपने परोपकार के उच्चादर्श की ओर फिर खिंचा

है, नहीं तो जौलाई के महीने में चार बजे की धूप ऐसी हलकी और उसका प्रकाश ऐसा मध्यम हो नहीं सकता था। अभी हम लोगों को कुङ्गी की महा भयानक चढ़ाई पर चढ़ना था। मैं तो थक कर चूर होगया; क्योंकि सवारी के साथ खच्चर चढ़ाई नहीं चढ़ सकती थी, इसलिए मुझे पैदल चलना पड़ा। विजयसिंह जी मुझसे बहुत आगे निकल गए, और ऊपर पहाड़ पर खड़े, मुझे चढ़ने के लिए उत्साहयुक्त वचनों से बुला रहे थे। मैं दो कदम चढ़कर बैठ जाता, और फिर ऊपर की ओर दृष्टि डालकर उस चोटी की ओर देखता, जहां विजयसिंह जी खड़े थे। "क्या कभी मैं वहां तक पहुंच सकूंगा"— यह निराशासूचक शब्द मेरे मुंह से निकले। तत्काल ही अपने को धिक्कार कर मैंने कहा—

"क्या जो काम यह भुटिए कर सकते हैं उसे मैं नहीं कर सकता? अवश्य कर सकता हूं"।

फौरन उठा लकड़ी के सहारे धीरे धीरे पैर आगे बढ़ाया, बड़ी कठिनाई से पैर उठते थे; शरीर का सारा बोझ पीछे की ओर गिरा पड़ता था। कुछ परवाह नहीं की। ज़रा सुस्ता लिया और एक पत्थर पर बैठकर तान उड़ाई—

"सारे जहां से अच्छा, हिन्दोस्तां हमारा;
हम बुलबुले हैं उसकी, वह गुलिस्तां हमारा।
पर्वत जो सब से ऊंचा, हमसाया आसमां का;
वह सन्तरी हमारा, वह पासेबां हमारा।"

भारत रक्षक हिमालय के गुण गाता हुआ आगे बढ़ा। मेरे आगे जो पशु जा रहे थे, उनमें एक घोड़ा बहुत थक गया था।

उसे मार २ कर ऊपर ले जा रहे थे। मैंने बहुतेरा कहा कि इसे कुछ खिलाकर लेजाना चाहिए, लेकिन चूंकि मंज़िल पूरी हुआ ही चाहती थी, इस हेतु किसी ने कुछ परवाह नहीं की। सब ऊपर चढ़ गए, उन्होंने कुङ्गरी विङ्गरी का घाटा तै कर लिया। विजयसिंह जी भी अपने नौकरों के साथ ऊपर पहुंच गए। मैं पीछे रहगया. और मेरे पीछे एक शराबी भुटिया व्यापारी हाँफता हुआ चला आता था। अब केवल सौगज़ चढ़ाई बाक़ी रह गई। किसी प्रकार दम लेता, चित्त को ढाढ़स देता, टांगों को पुचकारता, निरुत्साह को फटकारता ऊपर चढ़ ही गया। चढ़ाई ख़तम होगई; तिब्बत सामने है। १८३०० फीट की ऊंचाई पर पहुंच गया; भारत की सीमा का अन्त हुआ; भारतीय द्वारपाल के श्वेतभवन के जोहारवाले तिब्बती दरवाज़े के पास मैं खड़ा था।

आइए पाठक, तिब्बत प्रवेश करने से पहले एक बार जननी जन्मभूमि से प्रेमभरी बातें करलें; पीछे एकबार घूमकर देखलें; हिमाचल के श्वेतभवन पर दृष्टि दौड़ालें। माता से विदा मांगकर, उसकी आज्ञा से, उसका आशीर्वाद लेकर, आगे बढ़ेंगे, तभी आगे की यात्रा भी सफल हो सकेगी।

सिंहावलोकन

१८३०० फीट ऊंचे इस घाटे पर खड़े होकर पीछे की ओर दृष्टि डालिए। क्या देखते हैं? सामने बीस तीस मील के घेरेमें प्रकृति के सौन्दर्य की अवर्णनीय शोभा दृष्टिगोचर होती है। पूर्व, दक्षिण, पश्चिम किसी ओर नज़र दौड़ाइए, ईश्वर की उत्कृष्ट विभूति का अद्वितीय चित्र दीख पड़ता है। क्या इस पृथ्वी तल पर ऐसा मनोहर, ऐसा उज्ज्वल, ऐसा अप्रतिम, ऐसा रमणीक स्थल कहीं और होगा? क्या विश्वकर्ता से बातें करने के लिए ऐसा एकान्त स्थान कहीं और है? जिन आर्य-वीरों ने हिमाचल की प्रशंसा में सहस्रों ग्रन्थ बना डाले, वे प्रभु की रचनाशक्ति के रहस्य से अवश्य कुछ न कुछ परिचित थे। हिम से ढकी हुई चोटियां एक दो नहीं—बीस, तीस, चालीस, पचास, साठ, सत्तर—इस छोटे से भूमि के टुकड़े में हीरे के नगों की मानिन्द जड़ी हैं। प्रभात के भानु की रश्मियां जिस समय इन पर्वतों पर पड़ती हैं, उस समय की अलौकिक छटा क्या कोई लेखनी से चित्रित कर सकता है? उस निर्दोष चित्रकार के कौशल की लावण्यता को वर्णन करने की शक्ति मनुष्य में कहां, यहां तो–"न शक्यते वर्णयितुं गिरा तदा—" वाली बात है।

उन आर्यों को सचमुच सुन्दरता की परख थी जिन्होंने इन स्थानों पर आकर अपने परम पुनीत मन्दिरों की स्थापना की और अपनी भावी सन्तान को इधर की यात्रा का महात्म्य बताया। गर्दन तक विषयों की कीच में डूबा हुआ व्यक्ति भी इस भूपृष्ठ पर आकर ईश्वरीय अलौकिक शक्ति का गुणगान किए बिना न रहेगा। प्राचीन ऋषियों ने जो इधर की भूमि

को तपोभूमि कहा है सो सर्वथा सत्य है। कमज़ोर, दुबला पतला मनुष्य इधर आही कैसे सकता है, और यदि आवे भी तो उसको बिना परिश्रम किये भोजन कैसे मिलेगा। इसके अतिरिक्त ध्यानावस्थित होकर मनको एकाग्र करने के लिये इधर से अच्छा स्थल और कहां। सामने नन्दा-देवी अपनी सखियों के साथ साभिमान खड़ी प्रभु का गुण गान कर रही है। उसके नीचे की ओर त्रिशूल के दर्शन होते हैं, जिसकी तीनों चोटियां बाइस हज़ार फीट से अधिक ऊंची है। इनके पास ही नन्दकोट २२५३० फीट ऊंचा भारत की जयध्वनि कर रहा है। नन्दादेवी के पूर्व की ओर पञ्चाचूली अपनी पांच सहेलियों के साथ क्रीडा कर रही है। कई और ऊंची २ चोटियां इसके आस पास पूर्वमें हैं। नन्दादेवीके पश्चिम में श्रीकेदारनाथ जी, श्रीबद्रीनाथ जी आदि पर्वतों की प्रसिद्ध चोटियां हैं। हज़ारों यात्री प्रत्येक वर्ष इन तीर्थों की यात्रा कर अपने को धन्य मानते हैं। यदि हमारे पूर्वज इन स्थानों को पवित्र न ठहरा जाते तो भारतीय सर्वसाधारण बेचारे प्रकृति के इस रम्यस्थान को देखने से वञ्चित रहजाते।

सच मुच वह समय भारत के लिये बड़े गौरव का था, जब निष्काम कर्म करनेवाले ऋषि लोग इस तपोभूमि में बैठकर मनुष्य जाति के उपकार के उपाय सोचा करते थे; जब मातृभूमि के मान की रक्षा करने वाले क्षत्री इन जंगलों में आकर स्वच्छन्द घूमते थे; जब शुद्ध बौद्धधर्म के प्रचारक भिक्षु इन कठिन घाटों को पार कर अपने पूज्य गुरु का संदेश सुनाने के लिये इधर तिब्बत में आया करते थे। आहा! वह समय कैसे आनन्द का रहा होगा। कैसे निष्कपट, कैसे निरीह, कैसे सत्यवादी, कैसे साहसी वे भारतीय होंगे जिन्होंने इन

थारों को केवल अपने कर्तव्य पालनार्थ पार किया था। किसी वाणिज्य लोभ से नहीं, किसी कुटिल नीति की चाल से नहीं, किसी राजनैतिक विजयपताका उड़ाने के लिये नहीं, बल्कि उस निःस्पृह प्रेमके वशीभूत होकर वे आए थे, जो प्रेम प्राणिमात्र को अभय प्रदान करता है। प्यारे आर्यवीरो! यद्यपि आपके उन आदर्श चरित्रों को हुये बहुत काल बीत गया किंतु आज भी हिमालय के श्वेतभवन में आपकी उज्ज्वल कांति की ध्वजायें फहरा रही हैं। समय आने वाला है जब कि भारत संतान उन ध्वजाओं पर लिखे हुये इतिहास से अपना सम्बन्ध स्थिर करेगी और अपने जीवन को स्वाभाविक बना अपने प्राचीन पथ का पुनः अनुसरण करेगी।

वह देखो, प्रबुद्ध भारत दूर से अपने कीर्ति स्तम्भों को देख रहा है। उसकी आंखें इन ध्वजाओं पर लगी हुई हैं। वह देखता है कि संसार की सब ध्वजाओं से उसकी प्राचीन ध्वजा सबसे ऊंची है; वह सबके ऊपर है। तो क्या वह कभी नीचा रहेगा? कभी नहीं। उसने अपने उद्देश्य को देख लिया, उसने अपने निशान को समझ लिया। प्रबुद्ध भारत क्या कहता है-

"मेरा भारत सब से श्रेष्ठ है; वह मुझे सब से प्यारा है।"

क्या वह अपने पूज्य भारत को सब प्रकार से ऊँचा किए बिना मानेगा? कदापि नहीं। सैकड़ों वर्ष हुये वह युद्ध में गिर गया था; उसने आंखें बन्द करली थीं। उसने समझ लिया था कि उसका झण्डा गिर गया और वह परास्त हो गया। वह शताब्दियों के बाद आंखे खोलता है, किस लिये? ताकि उस पवित्र झण्डेके फिर एक बार मरते समय दर्शन कर ले। लो! वह क्या देखता है? सामने, उसका पूज्य झण्डा अभी

तक खड़ा है, और भारत का द्वारपाल अपने दलबल सहित उसकी रक्षा कर रहा है। उसके आनन्द की सीमा नहीं, उसके हर्ष का ठिकाना नहीं; क्यों न हो, सिपाही की हारजीत अपने राष्ट्रीय झण्डेके गिरने या खड़े रहनेपर निर्भर है। अपने झंडे को फहराता देख भारत में जान आ गई है, वह अपनी शक्तियों को समेट रहा है, वह अपने लक्ष्य की ओर टकटकी लगाए देख रहा है।

गगनारोही इस घाटे पर खड़ा होकर मैं प्रबुद्ध भारत की हर्षध्वनि सुन रहा था। उसका मधुर आलाप मेरे कान में आरहा था। मैंने सुनकर सप्रेम प्रभु को धन्यवाद दिया। उस सर्वशक्तिमान की अपार दया से ही हमारा झण्डा अब तक फहरा रहा है। ईश्वर की इच्छा है कि यह प्रेम, पताका फिर संसार में लहरावे और भारतीय भिक्षु पुनः अपने पवित्र सन्देशे को संसार में फैलाकर मनुष्य मात्र में शान्ति की स्थापना करें।

पाठक महोदय, कुङ्गरी बिङ्गरी के इस घाटे से आपको हिमाचल का श्वेतभवन भली प्रकार दिखाई दिया; आपने उसकी सुन्दरता भी देखी, नन्दादेवी और परशुराम जी के दर्शन भी किये। अच्छा, अब तिब्बतमें चलने के लिये तैय्यार हो जाइये। चलने से पहिले भारत जननी को श्रद्धापूर्वक नमस्कार कीजिए, "धन्य भारत ! धन्य भारत !! धन्य भारत !!!" की हर्षध्वनि से माता का आनन्द बढ़ाइये। जननी जन्मभूमि से आज्ञा लेकर अब हम तिब्बत में प्रवेश करते हैं।

---:o:---

तृतीय खण्ड

——:o:——

तिब्बत

भारतवर्ष की उत्तरीय सीमा, कश्मीर से लेकर आसाम तक, एक लम्बे देश से घिरी हुई है. इसी को तिब्बत कहते हैं। तिब्बत चीन के अधीन है और इसका शासन भार लामाओंके हाथ में है। जैसे हमारे यहां धनिक अथवा राजा लोग मन्दिरों के साथ उसका खर्च चलाने के लिये गांव लगा देते हैं मालूम होता हैऐसे ही तिब्बत भी चीन राज्य की ओर से धर्मखाते में दान किया हुआ है। तिब्बत के विषय में संसार का शिक्षित समुदाय बहुत कम जानता है। "तिब्बत" इस शब्द के उच्चारण करते ही ऊंचाई; बौद्धधर्म और लामा, यह तीन संस्कार मन में घूमने लगते हैं। तिब्बत को कहां से जाना होता है? उसका जलवायु कैसा है? किस प्रकार के लोग वहां बसते हैं? शासनप्रणाली कैसी है? देश की भौगोलिक स्थिति क्या है? इन विषयों का कुछ भी ज्ञान हम लोगों को नहीं। तिब्बत कहीं ऊंची जगह पर है, बस यह संस्कार मन में है। बहुत कम शिक्षित भारतीय यह जानते हैं कि हमारे देश के सैकड़ों व्यापारी भिन्न भिन्न रास्तों से प्रत्येक वर्ष तिब्बत जाते हैं। अधिकांश तो यही समझते हैं कि तिब्बत महात्माओं के रहने की जगह है, और वहां सैंकड़ों वर्षों के पुराने योगी लोग रहते हैं, वहां कोई कलयुगी पुरुष जा नहीं सकता। इस प्रकार के विचित्र संस्कार उस देश के विषय में हमारे अन्दर फैले हुए हैं।

तिब्वत की ऊर्ध्वभूमि (Tableland) संसार में सबसे

ऊंची है। इधर हमारा गंगाजी का मैदान समुद्री तल से कुछ ही ऊंचा है। इसके आगे उत्तर में पहाड़ियां छः हजार फीट ऊंची हैं: इसके आगे बढ़ते बढ़ते १८००० फीट तक हिमालय की दीवार ऊंची होती जाती है. जिसके इर्द गिर्द पांच छः हज़ार फीट ऊंची गगनारोही बर्फानी चोटियां आकाश को स्पर्श करने की चिन्ता कर रही हैं। इसके आगे धीरे २ नीचा होता जाता है। हिमालय की दीवार से तिब्बत आरम्भ होता है और शनैः शनैः पांच हज़ार फीट नीचे होकर १३००० फीट की ऊंचाई पर आजाता है। यहां से भूमि फिर धीरे २ ऊंची होनी शुरू होती है और पहुंचते पहुंचते १७००० फीट की ऊंचाई की खबर लेती है। वहां से क्यूनलून पर्वतमाला का आरम्भ होता है, जो २०००० फीट से अधिक ऊंची है। यहीं तक तिब्बत है इसके आगे चीनी तुरकिस्तान है, जिसकी ऊंचाई २००० फीट है। इसके आगे रूस का साइबीरिया है जो हमारे गंगा जी के मैदान की तरह समुद्री तल से कुछ ही ऊंचा है। इस प्रकार शून्य से आरंभ करके, चीनी तुरकिस्तान से आगे क्यूनलून की २०००० फीट से अधिक ऊंची पर्वतमाला से लेकर हिमालय की १८००० फीट पर्वतमाला तक तिब्बत का देश है, जिसकी ऊंचाई कहीं भी १३००० फीट से कम नहीं। यह देश सब प्रकार की धातुओं से परिपूर्ण है, सोने की खानें भी बहुत हैं। नमक सुहागा तो 'अति' से भी अधिक है। अनाज कहीं २ जहां घाटी होजाने से कुछ उष्णता मिलजाती है, थोड़ा बहुत होजाता है। झीलें इस प्रदेश में बहुत हैं, जिनकी प्राकृतिक शोभा अतुलनीय है। बड़ी बड़ी नदियां, जैसे सिन्धु, सतलुज, ब्रह्मपुत्र यहीं से निकलकर भारत में आती हैं। सरदी इस देश में बहुत पड़ती है। जोलाई के महीने में मैं ग्यानिमा मंडी में

छः छः कम्बल ओढ़कर सोया करता था।

इस विचित्र देश के निवासी डुग्गिये कहलाते हैं। वे (nomadic) घुमक्कड़ हैं। रमते रामों की तरह एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते हैं। एक स्थान पर घर नहीं बनाते जहां अपने पशुओं के लिये घास पाते हैं वहीं हज़ारों भेड़, बकरी, याक लेकर चले जाते हैं। याक चंवरगाय का तिब्बती नाम है। चंवर गाय ख़ूब दूध देती है। यह देखने में भद्दी मालूम होती है पर इस देश में यह बड़े काम का पशु है। बड़े बड़े लम्बे बाल इसके शरीरपर होते हैं। ये लोम ही इसके सच्चे मित्र हैं। इसकी पूंछ बड़ी सुन्दर गुच्छेदार होती है; उसीका चंवर बनता है। पशु के मरने पर उसकी पूंछ काट लेते हैं। यहां के प्रत्येक पशु के शरीर पर सुन्दर नरम पशम होती है। घास इधर बहुत अच्छा होता है, पशु उसको खाकर ख़ूब मुटाते हैं।

पश्चिमी तिब्बत में रुदोक नामकी एक मण्डी है। इधर भी व्यापारी लोग गरमिओं में इकट्ठे होते हैं। यह स्थान लद्दाख और कोराकोरम पर्वतमाला की ऊर्ध्व भूमि के निकट है। कराकुरम की सबसे ऊंची चोटी "गाड़विन आसटिन" २८२५० फीट ऊंची है और मौन्ट एवरिष्ट को छोड़कर संसार के सब पर्वतों से ऊंची है। इसके उत्तर में अतिशीत निर्जन रेगिस्तान है जिसको चंग कहते हैं। क्यूनलून इसी के उत्तर में है। इस क्यूनलून पर्वतमाला में यद्यपि घाटे तो हैं, पर ऐसे विकट हैं कि मनुष्य का उधर गुज़र नहीं हो सकता। वे घाटे बारह महीने हिम से आच्छादित रहते हैं। इन घाटों से निकल कर यदि कोई आगे बढ़े भी तो रास्ता और भी भयङ्कर रूप धारण करता है। नदियों के बाहर जाने के लिये मार्ग

नहीं, इस लिये जगह जगह झीलें हैं, और उनका जल नमकीन होता है। सोड़ा, नमक और शोरा स्थान २ पर पाया जाता है; वृक्षों का सर्वथा अभावहै और मनुष्य वहाँ रह नहीं सकता। सोने की खानें बहुत हैं, पर उसको निकाले कौन ? प्रकृति ने निज मायावी ढंग से इन खानों को सुरक्षित कर रक्खा है। काशगर से आनेवाले यात्री कराकोरम के १८५५० फीट ऊंचे घाटे को पार करना अच्छा समझते हैं किन्तु क्यून लून की ओर मुंह नहीं करते। मध्य एशिया के व्यापारी, लेह के रास्ते, लासा जाते हैं; या गरतोक के रास्ते कैलाश और मानसरोवर होकर तिब्बतकी राजधानी में पहुंचते हैं। गरतोकसे रुदोक जाने में आठ दस पड़ाव पड़ते हैं, रुदोककी तरफ से अच्छे २ घोड़े गरतोक में बिकने आते हैं, और नमक भी उधर बहुत होता है; आबादीभी अधिक है। रुदोक के आस पास जौ की खेती होती है।

पूर्वी तिब्बत के विषय में हम लोग बहुत कम जानते हैं। पश्चिमी तिब्बत, जहां मैं गया था, के विषय में कुछ पुस्तकें अंग्रेज़ी में निकली हैं, और तिब्बत के इसी के भाग साथ हमारा अधिक सम्बन्ध भी है। श्रीकैलाश और मानसरोवर पश्चिमी तिब्बत में ही हैं। हमारे अधिक व्यापारी इधर ही व्यापार करने जाते हैं, इसलिए इसी का कुछ ब्योरा लिखने की आवश्यकता भी है। इधर गरतोक में राज्य-कर्मचारी गरमियों में आकर रहते हैं। यहां सेप्टेम्बर में जब मण्डी होती है तो भुटिए लद्दाखी, कश्मीरी, तातारी, यारकन्दी, लासा के रहनेवाले तथा चीनी व्यापारी भी आते हैं। गरतोक में बड़ा शीत पड़ता है; सरदिओं में वहां कोई भला-मानस रह नहीं जाता; डाकुओं का बड़ा भय रहता है।

वे भयानक रूप बनाए हुए यात्रिओं और व्यापारिओं की ताक में घूमा करते हैं। उन्हींके डरके मारे जोहारी लोग इकट्ठे बन्दूक आदि शस्त्र लेकर चलते हैं। इन डाकुओं के पास बाबा आदम के समय के पुराने हथियार रहते हैं। वे उन्हीं को बड़ा हथियार समझकर, उन्हींसे यात्रियों को धमका कर, सब कुछ रखवा लेते हैं। भुटिआ लोग बेचारे किसी न किसी प्रकार अपना प्रबन्ध करते हैं; किसी किसी भी के पास लाइसेन्स भी है।

तिब्बत का शासन-भार लामाओं के हाथ में है। सब से बड़ा लामा ताशीलामा कहलाता है पर ताशीलामा को इतना अधिकार नहीं। देश का सारा शासन दलाई लामा के हाथ में है। वही तिब्बत का सर्वस्व है—जिसको चाहे मारे, जिस को चाहे रखे। दलाई लामा ही तिब्बत निवासिओं का ईश्वर स्वरूप है और वे अपनी प्रार्थना में—'ओम माने पद्मे हूं"—कहकर उसकी पूजा करते हैं, क्योंकि उनकी समझ के अनुसार दलाई लामा बुद्धदेव का अवतार है और वह जीवन-मरण के दुखों से छुड़ा सकता है। तिब्बत में यह मंत्र स्थान स्थान पर दीवारों और पत्थरों में खुदा हुआ है छोटे बड़े सभी इसका दिनरात जाप करते हैं; भिन्न भिन्न प्रकार के शब्दों से इसको रटते हैं और यही समझते हैं कि यह मंत्र सब व्याधिओं का इलाज कर देगा।

दलाईलामा के अधीन बहुत से कर्मचारी शासनकार्य्य में उसकी सहायता करते हैं। उनको गरफन, जोंगपन और तरजुम कहते हैं। किसी समूचे प्रान्त का वाइसराय गरफन कहलाता है और, ज़िलों के हाकिम जोंगपन और तरजुम पुकारे जाते हैं। इनको अपने ज़िले का प्रबन्ध करना, लम्बी लम्बी सज़ायें देना; अपराधी के अङ्ग कटवा डालना आदि

शक्तियां प्राप्त हैं। लासा का प्रधानलामा इन कर्मचारिओं की नियुक्ति करता है। सब से बड़ा हाकिम गरफन, उससे नीचे जोंगपन और उससे छोटा कर्मचारी तरजुम है। तरजुम अपने अधिकारों में जोंगपन से कम नहीं होता। ये अधिकारी दलाईलामा की स्वीकृति से, तथा अपने पदों को खरीद कर नियुक्त होते हैं। प्रत्येक तीसरे या पांचवें वर्ष में इन राज्यपदों की लासा में नीलामी होती है, जो सब से अधिक रुपया देता है वहां उन पदों का अधिकारी है। फिर वह अधिकारी अपनी प्रजा पर मनमाना टेक्स और दण्ड लगा सकता है।

पश्चिमी तिब्बत का वाइसराय गरतोक में रहता है। सालके साल यहां बड़ा भारी मेला लगता है और बड़ी मन्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी यहां आते हैं। यह मेला सेपटम्बर भर रहता है। लाखों रुपये का व्यापार यहां होता है। इर्द गिर्द के सब कर्मचारी—जोंगपन और तरजुम—यहां आते हैं। जाड़ों में यहां अधिक शीत होने के कारण गरफन गरगुंसा चला जाता है। यह सिन्धु नदी के तट पर है।

गरतोक के दक्षिण पश्चिम में तोलिङ्ग नामी विशाल मठ है। यहां का लामा धार्मिक गुरु होने के कारण गरफन जैसे ही अधिकार रखता है बल्कि कई अंशों में उससे ऊंचा है। जब कभी वह गरतोक जाता है तो वाइसराय महोदय को उसका स्वागत करना पड़ता है। तोलिङ्ग मठवाला लामा दलाई लामा को ही अपना हाकिम समझता है; इस लिए कभी कभी दोनों उच्च अधिकारिओं की आपस में चखचख हो जाती है।

भारतवर्ष से पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश करने के कई एक मार्ग हैं। उनके द्वारा जो आमदनी होती है उसे

जोंगपन अधिकारी बांट लेते हैं। जो व्यापारी टिहरी अथवा गढ़वाल के लीलांग और माना घाटों से हो कर तिब्बत जाते हैं वे चपरंग के जोंगपन को कर देते हैं; ऊंटा, धुरा और नेती के घाटों का शुल्क दावा के जोंगपन को मिलता है: लीमलेख और नैपाली घाटों की आमदनी तकलाकोट के जोंगपन को जाती है। इस प्रकार प्रत्येक घाटे का कर इन कर्मचारियों में बटा हुआ है। लामा की गवर्नमेंट को ये लोग ठेके के तौर पर रुपया देते हैं जो नियुक्ति होने से पहले निश्चित हो जाता है। गरतोक की मंडी में भारतीय व्यापारी कम जाते हैं एक तो उनको जिकपा डाकुओं का डर रहता है, दूसरे उधर का मार्ग बहुत कठिन है और शीत अधिक होने के कारण उनके पशुओं को बड़ा कष्ट होता है। जोंगपन कर लेने में तो बड़े मुस्तैद हैं पर डाकुओं को सज़ा देने अथवा रास्ता ठीक करवाने में बड़े सुस्त हैं। प्रजा के आराम का उनको कुछ भी ध्यान नहीं। भारत की कुल तजारत पश्चिमी तिब्बत के साथ चौदह लाख रुपए साल की है।

तरज़ुम कर्मचारी का मुख्य काम डाक का प्रबन्ध करना है। गरतोक के गरफन और लासा की गवर्नमेंट के बीच जो पत्र व्यवहार राज्य प्रबन्ध में विषय में होता है उसको ठीकठाक रखने का भार तरज़ुम पर है। गरतोक से लासा ८०० मील पर है। एक एक दिन के पड़ाव पर घोड़े बदले जाते हैं। और डाक दूसरे पड़ाव पर पहुंचाई जाती है। यदि चिट्ठी अत्यावश्यक हो तो डाकिए को घोड़े की पीठ पर बांध दिया जाता है ताकि रास्ते में वह कहीं आराम न कर सके। इन तरज़ुमों के अधिकार में भी देश का कुछ भाग ऐसा रहता है जिस पर वे निरंकुशता से हकूमत करते हैं। बरखा के

तरजुम के अधिकार में राक्षसताल और मानसरोवर के इरद गिरद भारतीय सीमा तक की भूमि है। इसका वर्णन हम आगे चल कर करेंगे।

——:o:——

तिब्बत में प्रवेश

१४ जौलाई बुधवार—संध्या होगई। कुंगरीबिंगरी के उस घाटे पर मैं अकेला खड़ा था। आप पूछेंगे, अकेला कैसे? हां अकेला। मेरे सब साथी आगे चले गये; वह शराबी भी आगे बढ़ गया, मुझे मातृभूमि से आज्ञा लेने में देर लग गई। सब ख़च्चर चले गये; नौकर आगे बढ़ गये। वह गरीब घोड़ा जिसको मार मारकर ऊपर लाए थे; वहीं कहीं छोड़ दिया गया आप कहेंगे इतनी निर्दयता? निर्दयता नहीं, वह घोड़ा आगे चल नहीं सकता था बेचारा वहीं कहीं गिर गया, उसपर कम्बल डाल उसके स्वामी उसे वहीं छोड़कर चले गए। ठहरे क्यों नहीं? ठहरना कैसा, वहां ठहरना तो मानों मृत्यु के मुख में जाना था। जब मैं कहता हूं मुझे वहाँ खड़े खड़े शाम हो गई, उसके अर्थ यह है कि मृत्यु के आगमन का समय आगया। शीत! हे परमेश्वर!! मेरे दांत बजने लगे। दिनको सूर्यदेव की कृपा से ज़ियादा शीत मालूम नहीं हुआ। जब तक वे रहे, श्वेतभवन में खूब आमोद प्रमोद रहा; उछल कूद मची; रंग राग रहे, अब भास्कर भानु चले गये, इस कारण श्वेतभवन में सन्नाटा है। सन्नाटा! हां सन्नाटा (Deathlike Silence) मृत्युवत् सन्नाटा!! वह कभी भूलेगा? कभी नहीं।

हां, मैं वहां खड़ा था। अकेला? बिलकुल अकेला! इधर बर्फ, उधर बर्फ; सामने बर्फ, पीछे बर्फ; चारों ओर बर्फ ही

बर्फ दिखाई देती है। जो हिम दिन के समय बड़ी नरम, लच-लचाती मन्द मुसकान करती थी, इस समय उसने कठोर रूप धारण करने की ठानी है। इसका कलेजा पत्थर सा हुआ जाता है; दया मया सब भाग रही है। बर्फ पर से पांव फिसलता है, हिम मुझसे आलिंगन करना चाहती है। मैं बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ उससे क्षमा मांगता हूं। बड़ी कठिनाई से छोड़ती है। चला, मैं चला; ज़ोर से पांव उठाता हूं। सामने अन्धकार है; मेरा खच्चर भी दिखाई नहीं देता। जीः! जाड़ा!! मेरे ईश्वर ऐसा जाड़ा!!! मोटा ओवरकोट पहनने पर भी कैसा जाड़ा लगता है। उतार आगया, तेज़ जा रहा हूंः तेज़, तेज़, तेज़; साथियोंको आवाज़ देता हूं। उनकी आवाज़ नीचे दूर इस सन्नाटे में आ रही है; वे मुझे बुलाते हैं। तेज़ चला। सामने घाटी है, उसके आगे पहाड़ी; दहिने हाथ ऊंचा पर्वत है, पीछे कुंगरीबिंगरी। नीचे नीचे उतर रहा हूं। मेरे साथी कुछ कुछ दिखाई देने लगे हैं; वे मुझे बुलाते हैं; मेरा खच्चर लिए खड़े हैं। उनके पास पहुंच गया। धन्य प्रभु! धन्य!! धन्य!!! मौत से बच गया।

यहां आने पर मालूम हुआ कि विजयसिंहजी अभी नहीं आए। हम लोग चल पड़े। थोड़ी दूर ही गये थे कि पीछे विजयसिंह जी की आवाज़ आई। वे आगये। मालूम हुआ कि वे उस घोड़े को किसी गढ़े में ले गये थे ताकि रात को वह सरदी से बच सके। उसपर कपड़े डाल, वहीं कहीं गढ़े में छोड़ आए थे। उसके बचने की कोई आशा न थी।

विजयसिंहजी तेज़ी से आगे निकल गये, मैं दो साथियों के साथ पीछे धीरे धीरे आता था। बिलकुल अंधेरा होगया। किसी जीवजन्तु की आवाज़ सुनाई न देती थी, केवल हमारे

चलने का शब्द और किसी छोटे पहाड़ी नाले की धीमी धीमी "गरगर" कान में आती थी। इस प्रकार चलते चलाते पांच छः मील जानेपर सामने आग दिखाई दी। उसीकी ओर चले। पहाड़ियों के घुमावफिराव के चक्कर काटकर चिरचिन पहुंचे, यहां हमारा डेरा था ; सब पशु मनुष्य पहुंच गये थे; आग जल रही थी; और भी व्यापारियों के डेरे यहां थे। मैं अपनी छोलदारी में घुस गया। मेरा बिस्तरा लगा हुआ था। विजयसिंह जी बेचारे तो सरदी के मारे परेशान थे। उन्होंने चाय बनवा कर पी ; मैंने कुछ सूखे फल खाये। नौकर बेचारे थके हारे थे, इस लिए उनको कष्ट देना उचित नहीं समझा। उन्होंने आशा दिलाई कि सवेरे पेट भर भोजन करावेंगे। रात को सरदी ! गज़ब का शीत था। सब कपड़े ओढ़े हुये, चार पांच कम्बल डालने पर भी बदन गरम नहीं होता था। ख़ैर किसी प्रकार रात काटी।

१५ जौलाई बृहस्पतिवार—सवेरे धूप चढ़ने पर उठे। विजयसिंह जी से बातें करते करते मालूम हुआ कि दो आदमी अपनी मूर्खता से कुंगरी बिंगरी के नीचे सरदी में अकड़ कर मर गए। हम लोगों पर ईश्वर की बड़ी दया रही। यदि कहीं रास्ते में ठहर जाते, या बर्फ गिरने लगता तो न जाने क्या होजाता। परमात्मा को धन्यवाद दिया।

धूप निकलने पर मैं पाल से बाहर निकला। लोटा लेकर शौचादि से निवृत होने के लिये चला। इर्द गिर्द दृष्टि दौड़ाने पर पता लगा कि हम लोग एक बर्फानी पहाड़ के पास ही पड़े हैं। वह ग्लेश्यिर हमारे बिलकुल निकट था। मैं पास की नदी में स्नान करने के लिये गया। जल बड़ा ठण्डा यख़ था। उसके किनारे बैठकर मैंने अपने सब कपड़े धोए; बिलकुल

नंगा होकर नदी में स्नान किया। वहां कोई मुझे देखने वाला न था। मैं था, मेरे सामने सूर्य भगवान, इर्दगिर्द पहाड़ियां—बस खूब स्नान किया। धूप कैसी सुखदा प्रतीत होती थी। वाह! वाह!! क्या आनन्द है। आकाश भी निर्मल था।

स्नानादि से निपट कर मैंने भोजन किया। रोटी, शाक, गरमागरम—क्या ही स्वादिष्ट था। भोजनोपरान्त सब चल पड़े। ग्यारह बजे होंगे। इसी नदी के किनारे किनारे बातें करते हुए जा रहे थे। यात्रा का जो डर था वह निकल गया; हिमालय पार कर लिया, अब तिब्बत के ऊंचे नीचे मैदानों का सफर कुछ भी कठिन नहीं था। धूप का आनन्द लेते हुये उस नदी के किनारे जा रहे थे। नदी में जल बहुत कम था, शायद वर्षा में चढ़ती होगी।

चिरच्चिन से चार मील पर तुकपु है, वहीं पहुंचे। तुकपु छोटी मण्डी है। यहां तिब्बतिओं के कई खेमें गड़े थे। वे अपनी भेड़ों को गिनगिनकर इधर उधर कर रहे थे; साथ साथ गाते भी जाते थे। अच्छी सी जगह देखकर हम लोगों ने भी डेरा डंडा डाल दिया। आज यहीं रहने का विचार था। इसलिये सब खच्चर खोल दिये गये, और उनको चरने के लिये छोड़ दिया। दो पाल खड़े कर उनके इर्दगिर्द माल की गठरियां चिन दी गईं ताकि हवा अन्दर न घुसने पाते। एक पाल मेरे और विजयसिंह जी के लिये था और दूसरे में खाना बनता था; उसी में नौकर भी रात को सोते थे।

विजयसिंहजी चूंकि प्रसिद्ध व्यापारी थे इस लिये बहुत सेहुणिए अपनी चोन्दियां फटकारते हुए इनसे मिलने के लिए

आए। जो कोई मिलने आता उससे विजयसिंहजी तिब्बती भाषा में—

" खमजम! भो खमजम !! "

कह कर स्वागत करते। जैसे हम लोग परस्पर मिलने पर कुशल मंगल पूछते हैं इसी तरह तिब्बती लोग "खमजम" कह कर अपना वही आशय पूरा करते हैं। पाल में हुणिओं की भीड़ लग गई। मैं मृगचर्म बिछाकर बैठा हुआ था। मेरे विषय में पूछताछ करने पर जब विजयसिंहजो ने उनसे कहा—

'काशी लामा ! काशी लामा' !!

तो सब बड़ी श्रद्धा से मेरी बातें सुनने के लिए उत्सुक हो उठे। प्रेमी खड्गराय भी आगये थे, उन्होंने दुभाषिये का काम किया। खूब धर्म सम्बन्धी बातें हुईं। ये लोग बड़े श्रद्धालु होते हैं; भूत, प्रेत, जादू टोना आदि सब मानते हैं, अपने दलाई लामा को बड़ा शक्तिशाली समझते हैं। शिक्षा का इनमें बिल्कुल अभाव है। प्रायः सब हथियार बांधते हैं, पर वही पुराने भद्दे शस्त्र। नये नये आविष्कारोंके विषयमें ये लोग कुछ नहीं जानते, संसार की सभ्य जातियों का बहुत कम हाल इन्हें मालूम है। जब से जापान ने रूस को पछाड़ा है तब से कुछ कुछ योरुपीन सभ्यता की चर्चा इनमें होने लगी है। चीनकी दशा भली प्रकार सुधरने के बाद इधर भी जागृति होने की पूरी आशा है। एशिया के जगने के कुछ कुछ चिन्ह तब इधर भी दिखाई देने लगेंगे, अभी तो पूर्व के केवल झोंके लग रहे हैं।

हुणिए व्यापारी प्रायः भेड़ों की खालों के वस्त्र पहनते हैं-बाल अन्दर की ओर और चमड़ा बाहर की तरफ, इस प्रकार फेलस्वेकोट का फेशन है। धूप में उस वस्त्र से एक बांह बाहर

निकाल शरीर का ऊपर का भाग नंगा कर घूमते रहते हैं। इनके बदन से दुर्गन्ध आती है। एक हुणिआ मेरे सामने बैठा हुआ था। बैठे बैठे उसने ज़मीन पर थूक दिया। मैंने दुभाषिये से कहा कि इसको समझा दो कि यहाँ न थूके। दुभाषिये के समझाने पर उसने उस थूक को मिट्टी सहित उठाकर अपने चक्खू पर डाल लिया। उसकी बुद्धि के अनुसार यही सभ्य शिष्टाचार था। मैं उसे क्या कहता, उस वेचारे को जो ठीक जंचा वही उसने कर दिखाया।

दिन भर हवा चलती रही। इधर बड़े ज़ोर से हवा चलती है। विजयसिंह जी तो अपने व्यापारियों से मिलने मिलाने में लगे रहे। ये हुणिए ग्यानिमा मण्डी न जाकर इधर ही चले आये थे। इनको पता लगा था कि भारत में इसवर्ष अनाज की कमी है, संभव है अनाज मिले न मिले, इस लिये ये लोग भुटिये व्यापारियों को रास्ते में ही मिलने आये थे ताकि ठीक ठाक करके पहले ही अनाज खरीद लें। ग्यानिमा पहुंचने पर शायद अनाज विक विका जाए, इस कारण बेचारे घबराये हुए रास्ते में डेरा किये पड़े थे। तिब्बत में इसवर्ष मौसम अच्छा था। भेड़ों की ऊन खूब हुई थी। कई भुटिये व्यापारियों ने अपना माल यहीं पर बेच वारे न्यारे करलिए, और यहीं से नमक सुहागा बदले में लेकर वापिस घर जाने की ठानी। कई साहूकारों ने माल खरीद कर, अपनी भेड़ों, झब्बुआ पर लदवा, नौकरों के साथ भारत भेज दिया, और नौकरों को जल्द लौट आने की ताकीद करदी। इस प्रकार बहुत से व्यापारियों का सौदा रास्ते में ही हो गया; यहीं तुकपु में ही उन्होंने अपनी भेड़ें झब्बू लाद लिये।

दो साधारण ऊंची पहाड़ियों के बीच में तुकपु नाम की

यह मण्डी है। तुकपु नदी के किनारे होने से इसकी यह संज्ञा हो गई है। यहां कोई पक्का मकान मैंने नहीं देखा। हुणिओं के खेमें छोल दारियां लगी थीं, बस इन्हीं के कारण यह बस्ती बन गई थी। जहां चौरस भूमि, जल निकट और घास का सुभीता हो वहीं छोटे छोटे पाल खड़े करने से तिब्बतिओं का ग्राम बस जाता है। जब ज़रा ऋतु प्रतिकूल होने लगी, तब ये अपने पाल उखाड़ कर पशुओं पर लाद लेते हैं और किसी दूसरे स्थान की ओर चल देते हैं। इसी प्रकार की यह तुकपु मण्डी समझ लीजिये। इर्द गिर्द पहाड़ियों पर घास बहुत थी। पशुओं को इन दिनों तिब्बत में बड़ा सुख मिलता है; अच्छा सुन्दर घास खाकर वे खूब उछलते कूदते हैं।

संध्या के समय में नदी के किनारे गया। जल कम था। नदी चौड़ी है। किनारे के पास जल भूमि में से फूट फूटकर निकल रहा था। तिब्बतिओं को शौच जाते देखा। ये लोग अपने अंग साफ करने के लिये जल का प्रयोग नहीं करते। हम लोग जो गरम देशके निवासी हैं इनकी इस आदत को बड़ा बुरा समझ इनसे घिन करते हैं। स्पष्ट बात यह है कि इनकी इस आदत का कारण यहां का अति शीत है। मनुष्य जैसी जैसी हालतों में रहता है, जिस जिस प्रकार की ऋतुओं का उसे सामना करना पड़ता है, वैसे ही उसका स्वभाव और रहन सहन हो जाता है। यह बात अवश्य है कि शिक्षा से उसमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो सकता है किन्तु इर्द गिर्द की प्राकृतिक दशाओं का प्रभाव बिलकुल दूर होना असंभव है। इस देश में जहां वर्ष में केवल तीन महीने हिम से छुटकारा मिलता है, लोग जल से कैसे प्रेम कर सकते हैं? इन दिनों जौलाई के महीने में हमारे पूष माघ से कहीं अधिक शीत यहां पर था। एक

तो तिब्बत की ऊंचाई कहीं १३००० फीट से कम नहीं, दूसरे इसके चारों ओर हिमावृत पर्वतों की चटियां, फिर भला यहां के निवासी गरम देश वालों की तरह जल को कैसे अपनायें ? यह हो नहीं सकता।

रात को कुछ काल तक भजन होते रहे। यहां की स्वतंत्र भूमि में किसी टिकटिकी का 'भय' तो था ही नहीं, मैंने शुद्ध और स्वच्छन्द वायु से अपने फेफड़ों को भली प्रकार भर लिया। रात्रि बड़े सुख से कटी।

१६ जौलाई शुक्रवार-सवेरे उठ कर चले। तुकपु नदी पार कर उत्तर पूर्व की तरफ हो लिये। धीरे धीरे धूप सेकते हुये खच्चरों पर जा रहे थे। एक पहाड़ी पर चढ़े, उस पर बर्फ़ पड़ी हुई थी। यहां हमें दो चार बादलोंने घेर लिया। थोड़ी देर में धुनकी हुई रुई की तरह हिम ऊपरसे आने लगा। अमरीका छोड़ने के बाद आज फिर इन रुई के गालां का मज़ा लूटा। घूमते घामते; पहाड़ियों के मामूली उतार चढ़ाव देखते हुये एक बड़ी घाटी में घुस गये। यहाँ डाकुओं का डर रहता है, इस लिये सावधानी से इधर उधर देखते भालते आगे बढ़े। घास और पौधे यहां बहुत थे। खच्चरें चलती चलती इनमें मुंह मार लेती थीं। नरम नरम घास के दो चार ग्रासों से मुंह भर लिया और दौड़ पड़ीं। रास्ते में कहीं किसी प्रकार की आबादी देखने में नहीं आई। पहाड़ियां, पर्वती नाले, घाटे, सोते देखते हुये दस बजे के करीब ठाजंग पहुंचे। यहां दोचार डेरे थे, बाकी भुटिया व्यापारी आगे चल दिये थे। एक पानी के सोते के पास डेरा डाला। रात भर यहीं रहे; खूब सरदी थी।

१७ जौलाई शनिवार—भोर होते ही यहां से चले। इस घाटी से निकल कर, जब ऊपर पहाड़ी मैदान में आये तो

पीछे और दहिने हिमालय की श्वेत चोटियों की कतार क्या भली मालूम होती थी। ऐसा रमणीक भूप्रदेश मैंने पहिले कभी न देखा था। हिमालय की पर्वत माला का ऐसा विचित्र सौन्दर्य्य तिब्बत से हो देखा जा सकता है। मैदान में खड़े होकर सामने दृष्टि दौड़ाइये, दक्षिण की ओर पूर्व से पश्चिम या पश्चिम से पूर्व जिधर आपका मन चले, उधर ही हिमालय की पर्वत-माला दौड़ती हुई बोध होगी। बर्फानी चोटियां बराबर एक के बाद एक सूर्य के प्रकाश में जगमग जगमग कर रही हैं। नैपाल, व्यास, चौन्दास, दारिमा, कुङ्गरीबिङ्गरी, बलच, शेलशेल, नेती, माना के घाटे सब अपनी अपनी जगह पर दिखाई देते हैं। यहां किसी बड़े कुशल चित्रकार की आवश्यकता है। ऐसा सुन्दर सुहावना विशाल चित्र हिमाचल का शायद ही कहीं से दीख पड़े। प्यारे पाठक, यदि आप केवल इसी विचित्र चित्र का आनन्द लाभ करने के लिये यहां की यात्रा का कष्ट उठावें, तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूं कि आपकी यात्रा सार्थक हो जाय।

शुद्ध निर्मल जल की नदी पारकर छिनकु पहुंचे। छिनकु ठार्जंग से चार मील होगा; यहां बहुत से पाल खड़े थे। हुणियों की भेड़े भां! भां!! कर रही थीं। नदी के स्वच्छ जल में स्नान करने की ठानी; बड़ा आनन्द आया। आज डण्ड पेल कर व्यायाम भी किया।

मीलम से जो यात्री मुझसे पहले चल पड़े थे, वे यहीं से तीर्थपुरी होकर जानेवाले थे। यहां से तीर्थपुरी को सीधा रास्ता जाता है। यद्यपि मुझे तीर्थपुरी जाना था, लेकिन मेरी इच्छा ग्यानिमा मण्डी की चहल पहल देख, अपनी कैलाश यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर, तब उधर जाने की थी ताकि मार्गमें

खाने पीने का कष्ट न हो। अब इसके आगे भुटियों से अलग होकर यात्री को कुछ खाने को नहीं मिलता। भुटिये व्यापारी ग्यानिमा तक जाते हैं; जो अधिक उत्साही हैं वे गरतोक भी पहुंचते हैं; कोई किसी कार्यवश कभी कैलाश भी जी चला जाता है, अतएव भारतीय यात्री को कम से कम पन्द्रह दिन का भोजन अपने साथ बांधना आवश्यक है। श्री कैलाश और मानसरोवर के मार्ग में भोजन छीनने वाले तो बहुत मिल जाते हैं पर देने वाला कहीं दिखाई नहीं देता। कोई दुकान भी नहीं, जहां से कुछ खरीदा जा सके। ऐसी दशा में यात्री इकट्ठे एक दूसरे की सहायता करते हुये चलते हैं, और यही उचित भी है। कुछ पहाड़ी यात्रियों ने सत्तू गुड़ भुटिओं से खरीद लिया था। वे अपनी अपनी गठरी मुठरी बांध दूसरे दिन चलने को तय्यार बैठे थे। कइओं ने भिक्षा मांग कर अपनी रसद इकठ्ठी की थी।

यहां छिनकु में उस लम्बे उदासी साधु की दुष्टता का पूरा परिचय मिला। जिन यात्रियों के साथ वह आया था वे सब उसके हाथ से तंग थे। सब ने उसकी शिकायत की। वे उस उदासी को अपने साथ तीर्थपुरी लेजाना नहीं चाहते थे, और वह हुड़दङ्गा उन्हीं के साथ जाना चाहता था। मेरे समझाने बुझाने पर वह रुक गया और पहाड़ी यात्री दूसरे दिन आनन्द से अपने मार्ग पर होलिए।

१८ जौलाई रविवार—आज सवेरे पांच चार मील चल कर एक बड़ी नदी पार की। इस नदी का नाम गुणवन्ती है। यह सतलज की सहायक नदी है। इसी के किनारे रेत में डेरा किया।

२६ जौलाई सोमवार—सवेरे चले। बड़े बड़े घास के मैदान देखने में आए। जङ्गली घोड़े हमारे बायें हाथ दूर चर

रहे थे। एकबार कुछ फासले पर मैंने तीन चार हुणिए सवारों को आते देखा। मेरे साथी भुटिए सब पीछे थे; विजयसिंहजी भी पीछे आरहे थे। मैं उन हुणिओं को डाकू समझ अपनी खच्चर रोक कर खड़ा होगया, और जब वे सौगज़ पर रह गए तो तेज़ी से अपनी खच्चर को चलाकर—"खमजम भो ! खमजम !" कहकर उनकी ओर दौड़ा ! वे भी 'खमजम' कह कर मेरे पास से निकल गए।

सामने दमयन्ती नदी चमक रही थी। उस के किनारे पहुंच मैं अपने साथिओं की बाट जोहने लगा। जब सब लोग आगए तो उस पहाड़ी नदी को पार किया। इसमें कमर तक जल था। खच्चर इसको आसानी से पार कर गए आज दिनभर इसके किनारे रहे। शाम को मैं दो घंटे नदी के किनारे बैठकर 'दमयन्ती' नदी के पत्थरों के साथ अकेला खेलता रहा। सामने तेज़ धार बह रही थी। उसको देखकर क्या क्या भाव मेरे हृदय में उठे—

"दमयन्ती ! कैसा सच्चा भारतीय नाम है। इस नाम के उच्चारण करने से सती, साध्वी, भारतीय पतिव्रता रमणी 'दमयन्ती' का स्मरण होआता है। पति प्रेम से विह्वल उस विदर्भ राजकुमारी की मनमोहिनी मूर्ति सामने खड़ी होजाती है। पति विरह से आतुर वह, भारतीयबाला, अपने प्यारे नल को जङ्गल में तलाश करने निकलती हैं; वह देखो जङ्गल के निर्जन स्थल में कामान्ध व्याघ्र उसके रूप लावण्य पर मोहित होकर उसको पकड़ना चाहता है; शुद्ध पातिव्रत धर्म की तीक्ष्ण खड्ग से सुसज्जित दमयन्ती अपने प्रभु की ओर निहारती है। आहा ! वह दृश्य—पातिव्रत धर्म की विजय और कामातुरता का पतन, सत्य की विजय और अधर्म का नाश—यह

उपदेशप्रद शिक्षा इस एक 'दमयन्ती' शब्द में भरी है।"

*   *   *   *   *

रातको भजन कीर्तन हुआ। प्रभुके गुणानुवाद गाये; भारत-माता को विजय के लिए प्रार्थना की गई। सुख से रातबीती।

२७ जौलाई मङ्गलवार—आज बहुत सवेरे उठे। सामने की पहाड़ी रात को बर्फ पड़जाने के कारण, श्वेतावरण विभूषिता, बन गई थी। आज ग्यानिमा पहुंचने का निश्चय था। यहां से ग्यानिमा केवल दस मील है। रास्ता सीधा मैदान ही मैदान है। छोटे छोटे भाड़ों से ढके हुए मैदान में से पगडन्डी जारही थी। दूर तक ऐसाही मैदान चला गया है। आगे ग्यानिमा के निकट मैदान रुण्ड मुण्ड सा था। यहां घास कम थी; शोरा अधिक है; भूमि सफेद है।

दस बजे ग्यानिमा पहुंच गए। यहां बिलकुल रद्दी, कच्चे मकानों से भी बदतर, हुणिओं के कबूतर खाने बहुत से बने हुए थे। पाठक, बहुत से हमारा अभिप्राय तीस चालीससे है। यहां थोड़ी २ भूमि जुदा जुदा व्यापारिओं के लिए निश्चित है। विजय सिंह जी ने अपने निश्चित स्थान पर पहुंच डेरा डाल दिया। सब सामान उतारा; जगह भाड़ बुहार कर ठीक की। गन्दा! शिवशिव !! इतने मैले ये लोग होते हैं। इनके घरों के आगे कूड़ा कर्कट, भेड़ों के सिर, बकरिओं की हड्डियां, लीद, गोबर, अला बला, सब कुछ पड़ा था। उसी में "खम-जम! खमजम!!" करते हुए हुणिए इधर उधर जा आरहे थे।

पाठक महोदय, ग्यानिमा में हमें कई दिन रहना है। आइए पहले आपको ग्यानिमा मण्डी का कुछ हालचाल सुनायें ताकि आप अपने मन में इसका चित्र खेंच सकें।

———:o———

ग्यानिमा मंडी

पश्चिमी तिब्बत में, भारतीय व्यापारियों के लिये, ग्यानिमा बड़ी मंडी है। यह हमारी भारतीय सीमा से ३५ मील दूर होगी। इसके उत्तर में तीर्थपुरी और कैलाश की पर्वतमाला, दक्षिण में भोट का इलाका, पूर्व में मानसरोवर और मान्धाता पर्वत, पश्चिम में तोलिङ्ग मठ, दावा और नेती हैं। यह मण्डी ग्यानिमा के बड़े चौड़े समतल मैदान में स्थित है। ग्यानिमा प्लेटो (अधित्यका) १५०८० फीट की ऊंचाई से आरम्भ हो कर, धीरे धीरे १४००० फीट ढलवान की ओर, सतलुज घाटे के किनारे किनारे पश्चिम की ओर, चला गया है। इस अधित्यका में पत्थर बिलकुल नहीं है; यात्री को चलने में बड़ा सुभीता रहता है; भूमि में से स्थान स्थान पर पानी फूटता है, इस लिये भूमि रात को बड़ी ठंडी होती है; हिमालय की बर्फानी चोटियां भी निकट हैं।

यहां डेढ़ दो महीने तक मण्डी भरती है। दूर दूर से व्यापारी आते हैं। रामपुर बशहरी, लद्दाखी, तुर्किस्तानी, यारकन्दी, चीनी, भुटिए व्यापारी अपना अपना माल पशुओं पर लाद कर लाते हैं। गधे, याक, झब्बू, खच्चर, भेड़, बकरी, घोड़े, जैसी जिसकी हैसियत हो, वैसा ही लद् पशु काम में लाया जाता है। दूर दूर के भिन्न भिन्न भाषाभाषी, विचित्र वस्त्र धारण किये हुये, यहां दीख पड़ते हैं। सभी तिब्बती भाषा जानते हैं; इसमें बातचीत कर एक दूसरे के हाथ अपना सौदा बेचते हैं। क़रीब साढ़े चार लाख रुपए का व्यापार इस मण्डी में होता है। साढ़े चार लाख रुपया क्या है? कुछ भी नहीं। जितना कष्ट ये लोग उठाते हैं उसके मुक़ाबिले में

साढ़े चार लाख का व्यापार क्या है, परन्तु बात यह है कि व्यापार हो नहीं सकता जहां हानि का भय अधिक और लाभ के साधन कम हों। एक तो विकट घाटों से गुज़रना, दूसरे रास्ते की सरदी, तीसरे अच्छी बनी हुई सड़क नहीं, चौथे नदिओं पर पुल नहीं, पांचवें डाकुओं का भय; कोई कहां तक हानि सह सकता है—तिस परभी धन्य है इन लोगों को, जो सब प्रकार के दुख सहकर अपना पेट पालने के लिये इतना उद्योग करते हैं। ग्यानिमा के पश्चिमी मैदान में जहां घाटियां हैं वहां जिकपा डाकुओं का बड़ा डर रहता है। इक्के दुक्के आदमी को वे छोड़ते थोड़े ही हैं। व्यापारी लोग इसी कारण मिलकर चलते हैं, और अपने पास हथियार रखते हैं।

ग्यानिमा मराडी में पक्के मकान बनाने की आज्ञा नहीं है। कच्ची ईंटें पानी के किनारे से काट काट कर उनकी दीवारें खड़ी करते हैं। उन दीवारों के ऊपर कपड़े, टाट, दरी आदि लगाकर मज़बूत ओलतीनुमा छत्तसी बना लेते हैं। यहां बड़ी तेज़ हवा चलती है, उससे बचने के लिये अपनी गठरिओं की दीवारें अन्दर से बना सब तरह के छेदों की पूर्ति करते हैं। जो व्यापारी लासा से आते हैं उनके तम्बू बड़े शानदार और दृढ़ होते हैं। आज कल जौलाई के आख़ीर में दोपहर को यहां तम्बू के अन्दर बैठे हुए गरमी मालूम होती थी। सूर्य की किरणें बड़ी तेज़ जलाने वाली होती हैं। रात को ऐसी सरदी कि बाहर कोहरा जम जाता है और भूमि सफ़ेद हो जाती है। ज़रा सा पर्वतों पर बर्फ गिरी और बड़ी ठंडी हवा चली। ऋतु का कुछ ठिकाना नहीं। सवेरे जब मैं बाहर नित्य कर्म के लिये जाया करता था तो पानी में हाथ डालने से हाथ सुन्न हो जाता था।

जहां मण्डी लगती है वहां पास ही पहाड़ी के ऊपर किसी प्राचीन किले के खंडहर हैं। कहते हैं यहां किसी राजा का स्वतन्त्र राज्य था और ग्यानिमा का मैदान जल से भरा था। उस झील के होने से दुर्ग बड़ा सुरक्षित समझा जाता था। इसी मैदान में एक ऊंचा टीला है, जिसके इर्द गिर्द ग्यानिमा मण्डी लगती है। इस टीले पर बहुत से पत्थर एक कुंड में इकट्ठे किये हुये हैं, जिन पर 'ओम माने पदमे हुं' का मन्त्र खुदा है। ये अक्षर देखने में बंगला लिपि जैसे मालूम होते थे। ग्यानिमा का लामा प्रतिदिन उस टीले पर चढ़कर पवित्र कुंड की पूजा किया करता था। हुणिए रंग विरंगी झंडियां यहां चढ़ाते हैं और मिन्नत मांगने आते हैं। इसी कुंड में पशुओं के सींग भी पड़े थे, जो किसी श्रद्धालु ने चढ़ाये होंगे।

व्यापारी लोग यहां अपने अपने डेरों में दुकानें लगाते हैं। कलकत्ता, बम्बई कानपुर से बिलायती और देशी कपड़ा खरीद कर ले जाते हैं। सूखे फल, चीनी, लालटैनें, मूंगे, मोती मालायें, घोड़ों की ज़ीनें, खिलौने आदि सामान लेजाते हैं। तिब्बती लोगों के सिक्के का नाम टंका है, इसका मूल्य छः आने के बराबर होता है, कभी बढ़ घट भी जाता है। भुटिए लोग इन्हीं टंकों को दाम में ले लेते हैं और जब तिब्बत से चलने लगते हैं तो यही टंके हुणिओं को देकर उनसे उनका माल घोड़े, पश्मीने, चुटके–आदि खरीद लेते हैं। तिब्बत का व्यापार अधिकांश अदले बदले का है। टंके भारत में तो चल नहीं सकते पर अङ्गरेज़ी सिक्का–रुपया, दोअन्नी, चौअन्नी, अठन्नी—तिब्बत में खूब चलती है। इस कारण भुटिओं को सिकों में प्रायः कसर खानी पड़ती है, तो भी वे किसी न किसी प्रकार उस कसर को निकाल लेते हैं।

अपने व्यापार को सुरक्षित रखने तथा अपना उधार वसूल करने के लिए भुटिए व्यापारियों को तिब्बती हाकिमों को प्रसन्न रखना पड़ता है। उनको कोई न कोई भेंट प्रत्येक वर्ष देनी पड़ती है, उनकी हर प्रकार खुशामद करते है। जो व्यापारी मिलनसार है, आदमी पहचानकर उधार देता है, हाकिमों को मुट्ठी में रखता है, वह अच्छा लाभ उठाता है। दुकानों पर दिन भर तांता लगा रहता है; हुणिए माल देखते फिरते हैं। जो सिर मुंडे हों वे लामा हैं; यही लामाओं की पहचान है, कम से कम मुझे तो यहां यही देखने में आया। लासा के व्यापारी गोरे और खब सूरत होते हैं, वे पश्चिमी हुणिओं की तरह भद्दे और काले नहीं होते।

प्रायः रोज़ मैं उस टीले पर चढ़कर मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटिओं को देखा करता था; संध्या को मैदान में घूमने जाता था। जहाँ जहां तिब्बती व्यापारिओं के तम्बू थे, वहां कुत्ते, रुद्ररूप धारण किए, अपने मालिकों के असबाब की रक्षा करते थे। जहां किसी को उन्होंने देखा, झट उसपर लपके। यदि मनुष्य सावधान न हो तो टांग चीर डालना तो उनके लिए साधारण बात है। मैं इनसे बड़ा होशियार रहता था। ये कुत्ते पशुओं की रक्षा करते हैं और उन्हें भेड़िओं से बचाते हैं।

इस साल मण्डी अभी भरी न थी। बहुत थोड़े व्यापारी आए थे; धीरे धीरे उनके आने की आशा लोग कर रहे थे। मेरा चित्त यहां नहीं लगा, ग्यानिमा की गन्दगी के मारे मैं परेशान रहता था; जिधर जाओ उधर ही दुर्गन्ध! डेरों के आसपास कूड़े के ढ़ेर थे। मैंने शीघ्र चलने का निश्चय किया, विजयसिंह जी से सलाह कर चलने की ठानी। खाने की

सामग्री इकट्ठी की। सब पांगटी भुटियों ने इस कार्य में हाथ बटाया। उनका मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। बेचारों ने ज़रूरत से अधिक सामान इकट्ठा कर दिया और उसको कैलाश जी पहुंचाने का ठेका भी ले लिया। सलाह यह ठहरी कि खाने का सामान सीधा ग्यानिमा से कैलाश जी भेजा जाए और मैं अपने दो चार साथियों के साथ पाँच दिनके खाने के लायक सत्तू लेकर तीर्थपुरी चल दूं और वहां से आगे कैलाश जी चला जाऊं; कैलाश जी पहुंच कर सब सामान मिल ही जायगा। पाठक शायद शंका करें कि सारा सामान साथ ही क्यों न ले गये? बात यह थी कि तीर्थपुरी की ओर दो स्थानों पर डाकुओं का बड़ा भय रहता है, कोई झब्बू वाला हमारे साथ जाने को उद्यत नहीं होता था इस लिये लाचार होकर ऐसा ही करना पड़ा। जाने का निश्चय होगया, सब ठीक ठाक कर लिया।

ग्यानिमा तक तो मैंने विजयसिंहजी के कम्बलों से गुज़ारा किया था, अब आगे चलने के लिये वे अपने कम्बल दे नहीं सकते थे। केवल एक मोटा काला कम्बल उनसे मंगनी ले लिया और थोड़ा खाने का सामान बांध बूंध दूसरे दिन चलने की ठानी।

———:o:———

तीर्थपुरी चलते हैं

२५ जौलाई रविवार—सवेरे ही अपने प्रेमी भुटियों से विदा होकर हम लोगों ने तीर्थपुरी की ओर मुंह किया। मील भरदो चार सज्जन पहुंचाने आए। दो रुपये तनख़्वाह पर एक पथप्रदर्शक को तीर्थपुरी तक साथ लिया। मेरे साथ जो और

यात्री थे. उनका ज़िकर मैं विशेष कारण वश नहीं करूंगा। पाठक बुद्धिमान हैं, वे मुझे इस छोटी सी बात के लिये क्षमा करेंगे।

आठ बज चुके थे। सामने मैदान ही मैदान दिखाई देता था। इधर की हवा ऐसी साफ है कि दूर की चीज़ स्पष्ट दीख पड़ती है और देखने वाले को उसके निकट होने का भ्रम हो जाता है। जब चलते चलते अधिक समय लग जाता है और निर्दिष्ट वस्तु फिर भी सामने ही दिखाई देती है तब अपनी भूल का ज्ञान होता है।

दो तीन मील चलकर एक झील के किनारे पहुंचे। यह झील ऊंची भूमिपर है। मालूम होता है, इसीका जल ग्यानिमा मंडी के इर्द गिर्द फूटकर निकलता है, या कोई और कारण होगा। यहां कुछ देर सुस्ता लिया। फिर मैदान मैदान चलकर एक नाला पारकर घास वाले मैदान में पहुंचे। यहां बहुत सी चँवर गायें, भेड़ें चर रही थीं। इनके स्वामी हुणियों का डेरा भी पास ही था। पहले विचार किया यहां ठहर जांय, क्योंकि आगे डाकुओं का भय था, किन्तु बाद में ईश्वर पर भरोसा कर चल पड़े। इस चौरस मैदान को पार कर एक खुश्क पहाड़ी के नीचे पहुंचे। इधर उधर पानी तलाश किया, कहीं नहीं मिला। प्यासे ही पहाड़ी पर चढ़ गये।

इस पहाड़ी को पार कर जब दूसरी ओर पहुंचे तो सामने घाटी दिखाई दी। छोटी छोटी खुश्क पहाड़ियों के बीच यह रेतीली घाटी है। डाकुओंके लूट मार करने योग्य इससे अच्छा स्थान कहां मिलेगा। दृढ़ विश्वास का अमृत पानकर घाटी में घुसे। इसको पार करते करते सूर्य ढल गया। थके हारे प्यासे एक सोते के पास पहुंचे। यहां थोड़ा थोड़ा पानी निकल रहा

था। इसी के पास सूखे पहाड़ी नाले में ठहर गये। इधर उधर से उपले इकट्ठे कर लिये। जो पथप्रदर्शक था वह बेचारा लकड़ी ले आया। रात को सत्तू खाए और सारी रात आग तापकर काटी; मैंने घंटा भर भी नीद नहीं ली।

२६ जौलाई सोमवार—पांच बजे सवेरे चल पड़े। ऊंची ऊंची पहाड़ियों पर चढ़ना पड़ा। बड़ी कठिनाई से पहाड़ी के ऊपर पहुंचे। यहां बहुत से झब्बू लदे हुये आरहे थे। दोतीन जोहारी व्यापारी साथ थे, इनकी इच्छा ग्यानिमा जाने की थी।

इस पहाड़ी के शिखर से उतार आरम्भ हुआ। एक तंग घाटी में पहुंचे। यह भी किसी पहाड़ी नाले का रास्ता है। वर्षा ऋतु में इसमें कहीं से जल आता होगा. आज कल तो मानो अपने भाग्य को रो रहा था। इस घाटी का रूप बड़ा भयानक है। तंग खुश्क घाटी, इर्द गिर्द दोनों ओर ऊंची पहाड़ियां मानो काट खाने को दौड़ती हैं। कोई पशु पक्षी यहां दिखाई नहीं दिया। दो घंटे में इसे पार कर एक तिमुहानी पर पहुंचे। सामने पानी की गज़ भर चौड़ी धार बह रही थी। यहीं बैठ गये और हाथ मुंह धोकर सत्तू फांकने लगे। घण्टे भर में निश्चिन्त होकर फिर बढ़े। अब चढ़ाई चढ़ना था। १६००० फीट घाटे पर ऊंचे चढ़ गये। यहां से पूर्व की ओर पहाड़ पहाड़ जाना था; सामने सतलुज चमक रहा था। देखने में मानो यह पास ही था, पर चलते २ प्यास का कष्ट सहते हुये, पाँच बजे सन्ध्या के करीब नदी के किनारे पहुंचे। सतलुज घाटी में बैठे हैं; सामने सतलुज नदी के पार तीर्थपुरी दिखाई देती थी; श्वेत श्वेत टीले धूप में चमक रहे थे। कुछ सुस्ताकर सतलुज का ठण्डा जल पिया। प्यास मिटाने के बाद नदी पार करने की तय्यारी की। नदी तेज बह रही थी अतएव बड़ी सावधानी से लकड़ी के सहारे

सतलुज की तीनों धाराओं को पार किया। तीर्थपुरी पहुंच गए आज की यात्रा में जल बिना बड़ा कष्ट हुआ। सारे रास्ते में केवल दो जगह जल मिला।

यहां रहने के लिए पहाड़ी टीलों में गुफायें खुदी हैं, कमरे से बने हुए हैं। एक ऐसी ही गुफा में रात बितानी पड़ी। तीर्थपुरी के लामा लोगों ने अपने रहने के लिए इसी प्रकार की गुफायें बनाई हुई हैं। जो यात्री तीर्थपुरी में बुद्धभगवान के मन्दिर के दर्शन करने आते हैं, उन्हीं को ये सब ठगते हैं। हमारे पीछे भी लग गए थे, वार बार सत्तू मांगते थे। रात किसी प्रकार कट गई।

२७ जौलाई मंगलवार– प्रातःकाल में गरमजल के चश्मे देखने गया। एक सफेद पहाड़ी पर कई जगह पानी उबल उबल निकल रहा था। दो एक स्थान पर जल ऐसा उष्ण था कि उसमें हाथ नहीं डाल सकते थे। इन गन्धक के चश्मों में से जो जल उबल उबल कर निकलता है वह पृथ्वी के नीचे नीचे राक्षसताल से आता है। यात्री लोग इस स्थान को "भस्मासुर की ढेरी" कहते हैं। दन्त कथा है कि किसी भस्मासुर नामी राक्षस ने श्रीशिवजी महाराज को प्रसन्न करने के लिए उग्र तपस्या की थी। भोले देवता उसके प्रेमपाश में बंध गए और उससे वर मांगने के लिए कहा। भस्मासुर बोला "भगवन् ! मुझे ऐसी शक्ति दीजिये कि जिसके सिर पर मैं हाथ रक्खूं वह उसी क्षण भस्म होजाए"। महादेव जी ने कहा "एवमस्तु"। जब भस्मासुर के हाथ में भस्म करने की शक्ति आगई तो उसने दुष्टता वश उसका प्रयोग शिवजी पर ही करना चाहा। महादेव जी भागकर पृथ्वी के नीचे छिप गए। भस्मासुर ने देवी पार्वती जी को घेरा और उनसे अपना

प्रेम प्रगट किया। पार्वती जी ने कहा—

"बहुत अच्छा। तुम पहले शिवजी का ताण्डव नृत्य कर के दिखलाओ, विना उस नृत्य को जाने कोई भी भगवान की वस्तु ग्रहण नहीं कर सकता।"

भस्मासुर उन्मत्त हो नाचने लगा, और उसने ताण्डव नृत्य करते करते अपने हाथों से अपने ही सिर को भूल से छू दिया, बस उसकी दुष्टता का यहीं अन्त हुआ। इसी कारण इस स्थान को भस्मासुर की ढेरी कहते हैं, और यात्री लोग यहां की सफेद मिट्टी अपने साथ लेजाते हैं और उसको पवित्र मान अपने शरीर पर लगाते हैं।

शतद्रु नदी के किनारे, तीन घाटिओं के संगम पर, तीर्थपुरी का मन्दिर विराजमान है, इर्दगिर्द सुन्दर सुहावना घास, लहलहाते हरे मैदान, मीलों लम्बे चले गए हैं। पहाड़ी पर खड़े होकर दृष्टि डालने से प्रकृति का विचित्र चित्र दिखाई देता है। चारों ओर हरी हरी दूब पशुओं के चित्त को प्रसन्न करनेवाली है। पहाड़ियां खुश्क हैं पर मैदानों में घास बराबर चला गया है और मैदान भी बड़े बड़े लम्बे हैं। इन मैदानों के बीच बीच कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाले पहाड़ी नाले गड़ गड़ करते हुए जा रहे हैं; और सतलुज की शक्ति बढ़ाते हैं. ऐसे स्वच्छ स्थान पर तीर्थपुरी के चश्मे हैं, किन्तु तिब्बत वासी उस प्राकृतिक सौन्दर्य्य का कुछ लाभ नहीं उठाते। मरे हुए पशु, कुत्ते आदि सतलुज में ही फेंक देते हैं; नदी के पास ही मलमूत्र त्याग करते हैं, हालांकि इर्दगिर्द बहुत भूमि दिशा फिरागत जाने को है, लेकिन इनको सफाई का तनिक भी ध्यान नहीं।

आज सवेरे तीन घंटे गरम जल से कपड़े धोते रहे। कई

दिनों का दरिद्र दूर किया। दोपहर को मन्दिर देखने गए। अंधेरी गुफ़ा में मन्दिर है। मैं तो अच्छी तरह देख भी नहीं सका। घी के छोटे छोटे चिराग़ बुद्ध भगवान की मूर्ति के आगे जल रहे थे। इन मन्दिरों में घी बहुत चढ़ाया जाता है। कई लामाओं के चित्र यहां टंगे थे।

रात को इधर का जंगली साग बनाकर खाया। चश्मे के पासही खुले में सोए। आग सारी रात जलती रही।

२८ जौलाई से ३० जौलाई तक—सवेरे बड़ी कठिनाई से कुली का प्रबन्ध कर सके। हमारा पथ प्रदर्शक तो ग्यानिमा लौट गया, उसकी ड्यूटी तीर्थपुरी तक की थी। तीर्थपुरी में एक लामा आया हुआ था, वह हिन्दी भाषा कुछ कुछ बोल सकता था, उसी की सहायता से दो कुली मिले। ये दो कुली तीर्थपुरी के छोटे लामा थे, जो श्री कैलास प्रदक्षिणा के लिए जा रहे थे। इन दोनों को असबाब उठाने तथा मार्ग दिखलाने के दो रुपये छः आने दिये।

तीर्थपुरी से कैलाश जी तीन दिन का मार्ग है। इन तीन दिनों की यात्रा में हमें रास्ते में घास के मैदान, पहाड़ी नदियां, और भेड़ चराने वाले हुणिए मिले। कई नदियां पार करनी पड़ती हैं; बड़ी सावधानी चाहिये। ज़रा कहीं पैर फिसल गया तो नदी अपने साथ ही ले जाती है। मैदानों में घास बहुत है; हजारों भेड़ बकरी आनन्द से चर सकते हैं। हवा बड़ी तेज और ठण्डी चलती है। यात्री को हवा से बचने के लिये गरम कन्टोप का अवश्य प्रबन्ध करना चाहिये। रात को हम लोग खुले में जल के पास डेरा करते थे। अपने सोने लायक भूमि साफकर पत्थरों की दो फीट ऊंची दीवारें खड़ीकर, फिर पासही आग जला विस्तरे बिछाकर सो रहते थे। क्या करते,

किसी प्रकार समय काटना था। तिब्बती लोग ऐसे पत्थरों के घेरों को डोंगे कहते हैं। सारे तिब्बत में इसी प्रकार के डोंगे पांच पांच चार चार मील पर बने रहते हैं। यात्री लोग इन्हीं से मार्ग की पहचान करते हैं। इस देश में न सड़कें हैं, और न पुल ही हैं. सब सफर 'अभ्यास' पर निर्भर है। जो नित्य के घुमक्कड़ हैं वे ही पथ-प्रदर्शक का काम दे सकते हैं। तिब्बती पथ-प्रदर्शकों का मुख्य भोजन चाय है। चाय बनाकर सत्तुओं के साथ खाते हैं, जैसे गरम देश में जल पिया जाता है, ऐसे ही इधर चाय का व्यवहार होता है। जहां जाकर पहुंचे, लकड़ी उपले इकट्ठे किये, दियासलाई हो तो अच्छा, नहीं तो चकमक पत्थर की रगड़ से आग पैदा कर धुकनी से झट आग सुलगा लेते हैं। इधर की हरी लकड़ी भी खूब जलती है। छोटे छोटे झाड़, आधे भूमि के अन्दर आधे बाहर, होते हैं। इनको उखाड़ कर तत्काल जला लिया जाता है। ईश्वर की माया है।

तीस जौलाई को सवेरे हम श्रीकैलाश के नीचे सिन्धु नदी के किनारे पहुंच गये। यहीं से कैलाश जी को मार्ग जाता है। सिन्धु नदी कैलाशपर्वतमाला से निकल कर आती है। इसी के किनारे किनारे कैलाशजी की ओर हमको जाना था। सामने पर्वतों के बीच मार्ग फटा हुआ है; सिन्धु नदी ने इस मार्ग को पर्वत फोड़ कर बनाया है। इसी में हम सब घुसे। यहीं से कैलाश परिक्रमा का आरम्भ होता है।

विजयसिंहजी ने मेरे खाने पीने का सामान लैन्डो गुनबा (मुख मन्दिर) में भेजा था इसलिये आज इसी मन्दिर में ठहर गये। परिक्रमा के पांच छः मील चलने पर यह मन्दिर मिलता है। यह भी गुफा खोदकर बनाया गया है। नदी की घाटी में पांच सौ फीट ऊंचे टीले पर अच्छा बड़ा मन्दिर है।

उसके अंदर एक कोने में, जहां जानवरों की हड्डियां पड़ी हुई थीं, हम लोगों को ठहरने का स्थान मिला। उसी को साफ करके वहीं रोटी बनाई और पेट-पूजा की। ग्यानिमा छोड़ने के बाद आज रोटी और बड़िओं का शाक खाने को मिला। भोजन के बाद मन्दिर देखने गये। यहां अच्छा बड़ा पुस्तकालय है। तिब्बती भाषा के बहुत से ग्रन्थ देखने में आए। उनको कपड़ों में लपेट कर सावधानी से रखते हैं। लामा लोग हर समय 'ओम माने पद्मे हुं' का जाप करते रहते हैं। स्त्रियाँ भी संन्यासिनों की तरह इन मठोंमें रहती हैं,और अपने समय को बुद्ध भगवान की सेवा में खर्च करती हैं।

कैलाश जी की प्रदक्षिणा करनेका घेरा २५ मीलका है और तीन दिन लगते हैं; कई यात्री दो दिनमें ही मार्ग तै कर लेते हैं; तिब्बती लामा तो रात दिन चलकर इसे पूरा कर सकते हैं; जैसी जिसे सहूलियत होती है वैसा ही वह करता है। जो अमीर यात्री हैं, जिनके साथ नौकर तथा खेमें हैं, वे आनंद से पांच चार दिन में अपने सुभीते अनुसार यात्रा का मज़ा लूटते हैं। जिनके पास नौकर नहीं हैं वे जहां तक जल्दी हो सकती हैं करते हैं, क्योंकि सामान पीठ पर लाद कर इन पहाड़ों की यात्रा नहीं हो सकती। जिनको अभ्यास है वे कर भी सकते हैं। मैं तो अपनी कहता हूं, मेरे लिये तो पांच सेर बोझ लेकर चलना भी कठिन था। इसी कारण यहां मुख-मन्दिर से दूसरा कुली दरचन तक तलाश किया। अब मेरे पास बोझा अधिक होगया था। विजयसिंह जी ने जो सामान भेजा था वह और मेरे कपड़े लत्ते-इन सब की एक गठरी बना-मुखमन्दिर के लामा के सुपुर्द करदी। गठरी को अच्छी तरह सीकर, उसपर लाख की मुहरें लगा दीं ताकि लामा के

गुरुभाई रात को सामान निकाल कर हज़म न कर जायँ। दरचन चौथा और आखरी पड़ाव है। परिक्रमा करने वाले दरचन से शुरू करके दरचन ही लौट आते हैं; यही पूरी पच्चीस मील की परिक्रमा है।

३१ जौलाई शनिवार—सवेरे पांच मील तक सिन्धु के किनारे किनारे चले गये। रास्ते में कई जगह बनैले कबूतरों को कलोलें करते देखा; बड़ा आश्चार्य हुआ। इन बर्फानी पर्वतों में यह भोला भाला पक्षी कहां से आगया। रास्ते में दोनों ओर जलप्रपात देखे। कैलाश जी की चोटी मेरे दहिने हाथ थी और बायें हाथ दूसरी पहाड़ियां, दोनों ओर से हिम ढ़ल ढ़ल कर आरही थी। आगे बढ़े। सामने कैलाश जी के भव्य दर्शन हुए।

——:o:——

श्री कैलाश दर्शन

क्या ही अलौकिक दृश्य था। यह अनुपम छटा! श्री कैलाश जी का पर्वत सचमुच ईश्वरीय विभूति का अनोखा चमत्कार है। मैंने मन्दिर शिवालय बहुत से देखे हैं पर ऐसा प्राकृतिक शिवालय इस भूमण्डल पर कहीं नहीं है। जिस कुशल शिल्पी ने प्रथम शिवालय की रचना विधि का नकशा तय्यार किया होगा, उसके हृदय पट पर तिब्बत स्थित इस नैसर्गिक शिवालय की प्रतिकृति अवश्य रही होगी, इसके बिना वह कदापि शिवालय बना नहीं सकता था। प्रकृति ने हिम द्वारा वही काट, वही छांट, वही घेरा, वही चिनाई, वही सजावट इस कैलाश पर्वत के निर्माण में खर्च की है। भारत में नकली शिवालय देखा करते थे, आज यहां शिवजी का असली

स्थान देख लिया। २१८५० फ़ीट ऊंचे इस कैलाशजी की महिमा का वर्णन क्या कोई कर सकता है ? किस गौरव के साथ उन्नत मुख किये, यह चारों ओर देख रहा है। इसकी दृष्टि अपने प्यारे भारत पर पड़ रही है, जहां उसकी प्रतिकृति बनाकर करोड़ों आत्मायें "हर हर महादेव !" की ध्वनि कर अपने को धन्य मानती हैं। दूर-चीन, जापान, स्याम, ब्रह्मा, लंका-आदि देशों से बौद्ध धर्मावलम्बी इसकी परिक्रमा करने आते हैं। श्रीकैलाश जी का यह विश्वकर्मा रचित मन्दिर उस दिन की प्रतीक्षा कर रहा है, जब स्वाधीन भारत के बच्चे, चीन, जापान, के बच्चों के साथ प्रेमालिङ्गन करते हुये, इसकी परिक्रमा करेंगे।

जिस कैलाश जी की महिमा पुराणों ने गाई है, जिसकी प्रशंसा में तिब्बती ग्रन्थ भरे पड़े हैं, उस श्रीकैलाश के दर्शन कर आज मैंने अपने आपको धन्य माना। यद्यपि इस पवित्र दर्शन के लिए बड़े बड़े कष्ट सहने पड़े, गन्दे तिब्बतियों के साथ रहना पड़ा, लामाओं की घुड़कियां सुनीं, तो भी क्या, इस आनन्द के सम्मुख वे सब दुख हवा होजाते हैं ! सिन्धु नदी के किनारे जारहे थे पर आंखें कैलाश जी पर थीं। दूसरा मन्दिर आगया। इसको डुरफू कहते हैं। यहां सिन्धु पारकर गौरीकुण्ड की ओर चले। कैलाश जी यहां बिल्कुल सामने, बिल्कुल पास है। चढ़ाई बड़ी कठिन है। धीरे धीरे चढ़ा। रास्ते में वर्षा होने लगी, फिर साफ होगया। ऊंचे, ऊंचे चढ़ते हैं। कैलाश जी के ठीक पीछे, उत्तर की ओर गौरीकुण्ड है। यह बारह महीने जमा रहता है। चार बजे के करीब यहां पहुंचे। कुण्ड क्या है, खासी झील है। आजकल जौलाई में इसपर बर्फ जमी थी। गौरी कुण्ड के किनारे बैठकर सत्तू खाये और

बर्फानी जल पिया।

चलने की शीघ्रता की, क्योंकि बर्फ गिरने का भय था। श्रीकैलाश जी को तीन बार नमस्कार किया, फिर 'वन्देमातरम्' का जाप कर 'हरहर महादेव!' की ध्वनि से श्री कैलाश जी को प्रसन्न कर चल पड़े।

यहां से नीचे बेढ़ब उतार है। जैसी बेढ़ब चढ़ाई से ऊपर आए थे, वैसेही नीचे साढ़ेतीन मील जाना था। एक प्रेमी की सहायता से साढ़े तीन मील बेढ़ब उतार को पूरा किया।

नीचे पहुंचे ही थे कि बादल फिर घिर आया। मूसलाधार वर्षा घंटे भर तक होती रही। एक बड़े ढोंके की आड़ में देर तक बैठे रहे। चारों ओर जलही जल दिखाई देनेलगा। जब वर्षा थम गई तो नदी के किनारे तीसरे मन्दिर की तरफ चले। पाठक अब हम लौटते हैं,सुनिए; उस घाटेके पास से जहाँ पर्वत माला फोड़कर सिन्धु नदी मैदान में आई है, हम लोगों ने परिक्रमा आरंभ की थी। धीरेधीरे नदीके किनारे ऊपर चढ़ते हुए डरफू पहुंचे थे; वहां कैलाश जी की पूर्णकलाके दर्शन कर दहिने हाथ गौरी कुण्ड की ओर घूमे, इस घुमाव से गौरीकुण्ड तक विकट, टेढ़ी मेढ़ी चढ़ाई पूरीकर, कुंड का अमृत रूपी जल पान किया। वहां से उतरे। डरफू, से लेकर इस उतार के पूरा होने तक जो मार्ग है उसको आप श्रीकैलाश जी की पीठका रास्ता समझिये। डरफू के पास हमने सिन्धु नदी को छोड़ दिया था, उतार खतम होने पर कैलाश पर्वतमाला से निकलने वाली दूसरी धाराको पकड़ लिया। अब इसके किनारे किनारे चलकर पीछे लौट पड़े।

संध्या होगई। पानी में "छल! छल !!" करते हुये जारहे थे। जूता टूट गया, उसको फेंक देना पड़ा। बाईं ओर भयानक पर्वत-माला, दाहिनी ओर कैलाशजी, सामने विकट मार्ग चले जारहे हैं; साथी सब आगे चले गये, केवल दो जने मेरे साथ थे। एक साथी की ग़लती के कारण रास्ता भूल गये। बिलकुल अन्धकार छा गया। अंधेरा! मुझे दिखाई नहीं देता; टटोल टटोल कर पहाड़ी दुर्गम पथ पर जा रहा हूं। बायें हाथ नदी भीषण नाद करती हुई जा रही है, दाहिने हाथ कैलाश जी की पर्वतमाला चली गई है। रास्ता नहीं सूझता। इस घटाटोप अन्धकार में दहिने हाथ के पत्थरों के पास बैठ जाते हैं। जिस साथी की भूल का यह परिणाम था वह बेचारा पछताता है, पर " अब पछ-ताये क्या होत है जब चिड़ियां चुग गईं खेत"—आज इसी विकट घाटी में, बर्फानी पर्वतों के बीच, खुले में रात काटनी पड़ी, परन्तु एक सहारा उस सर्वशक्तिमान का था जिसने सदा अपने प्रेमिओं की मुसीबत में रक्षा की है।

भीगे हुए पत्थरों पर बैठे हैं; काला कम्बल ओढ़ा हुआ है, छाता लगा रखा है; आकाश मेघों से आच्छन्न है। सामने से नदी की गर्जना की आवाज़ आरही है; इर्द गिर्द काला अन्ध-कार, सामने ऊंचे पर्वत पर बर्फ पड़ी है। बैठा हूं; चुपचाप बैठा हूं; अकड़ा हुआ बैठा हूं; ज़रा इधर उधर नहीं डोलता ताकि कपड़े मिट्टी से लतपत न होजायें, ऊपर से वर्षा होरही है। ऊंघता हूं। यह क्या? पीछे से पानी आरहा है। दोनों पैरों को अच्छी तरह ऊपर पत्थरों पर रखता हूं, कपड़े सम्भालता हूं ताकि पानी नीचे नीचे से चला जाए। वर्षा बन्द होगई, प्रभु का नाम लेता हूं; कुछ ध्यान करता हूं। धीरे धीरे रात बीतती है—एक, दो, तीन, चार, पांच—यह सामने सूर्य भगवान का

देदीप्यमान रथ आरहा है। अन्धेरा भागता है, वह प्रकाश के सामने कैसे ठहरेगा। दिन होगया। आह! ३१ जौलाई १९१५ शनिवार की रात इस प्रकार कटी। आयु भर यह रात भी याद रहेगी।

१ अगस्त रविवार—सवेरे छुडुलवु मन्दिर में पहुंच गए* यहां मन्दिर के आगे बहुत सी भण्डियां लटकाई हुई थीं। मन्दिर वैसा ही गुफा की तरह है; दरवाज़े, और छतें भी होती हैं; दो तीन मंज़िले मकान बनाते हैं। यहां दो रुपए देकर मैंने टाट का जूता खरीदा। जूता क्या था खाली मोटे टाट का तलाहा तला था। उसी में रस्सी डाल पैर के इर्दगिर्द जकड़ लेते हैं, उसी भद्दे तले को पहिर कर आगे बढ़ा। नदी के किनारे किनारे चलकर चार घंटे में घाटी से बाहर निकले; मैदान में पहुंचे; सामने है दरचन। पूरी परिक्रमा होगई।

दरचन कैलाशजी के उपत्यिका में छोटा सा ग्राम है; यह भी नदी किनारे बसा है। यहां एक दुकानदार के आंगन में ठहरने का प्रबन्ध किया। जब बोरा खोलकर अपने रसद सामान ठीक करने लगे तो दरचन मन्दिर के मेनेजर को पता लगा। वह हमें अपने साथ लेगया हमने उसके यहां ठहरने का प्रबन्ध करलिया। तिब्बती लोग हमारे अन्नत्र—आटा दाल चावल-आदि को किसी धोके से ठगना चाहते थे; सभी की लालसा थी कि इनसे कुछ न कुछ ठग लें। जिस प्रकार हमारे तीर्थों पर पण्डे गिद्धों की तरह यात्रियों पर झपटते हैं ऐसेही यहां भी देखने में आया।

दारिमा के दो तीन व्यापारियों की सहायता से मैंने झब्बू किराए पर लिया। यहां का दुकान्दार हुणिया तकलाकोट जा

* यहां से कुछ साथी कहीं चल दिये-लेखक

रहा था, उसी का भव्बू छः रुपए पर किराए कर लिया।

यहां से मानसरोवर और मानसरोवर से तकलाकोट जाना था, वहां से भारतीय सीमा अति निकट है। उस हुणिए की सलाह तीन अगस्त को चलने की थी, इसलिए मुझे दो दिन यहां ठहरना पड़ा।

दरचन मन्दिर में तिब्बती क्रूरता की भयंकर व्यवस्था मालूम हुई। लामाओं ने एक बकरे को पकड़ कर उसका मुंह और नाक कसकर बांध दिया; दम घुटने से पशु छटपटाने लगा; बेचारे ने तड़प तड़प कर प्राण दिए। अपनी इस क्रूरता का कारण इन्होंने यह बतलाया कि बौद्धधर्म के अनुसार लामाओं को जीवहिंसा का निषेध है, इसलिए उस नियम की रक्षाहित पशु को शस्त्र से नहीं मारते, केवल दम बन्द कर देते हैं, पशु आपही मर जाता है! यह फिलासफी इन लामाओं की है। आज रात को कढ़ी और चावल बनाकर खाया। थके हारे सो गए। रात भर वर्षा होती रही।

२ अगस्त सोमवार—जिस हुणिए के साथ हमें जाना था, उसका नाम मैं 'बूभी' रखता हूं, क्योंकि वह बातें करते करते "बूभी! बूभी!!" कहकर चिल्लाता था। 'बूभी' आज कैलाश की परिक्रमा करने गया था। हमें भी यहीं ठहरना पड़ा। दरचन में पक्के मकान बने हैं। जिस मन्दिर में हम ठहरे थे वह दो मंज़िला और पक्का बना हुआ है। आज नमकीन रोटी बनाकर मक्खन के साथ खाई। तीन रोटी बूढ़े लामा को दे दी, इस पर मैनेजर हमपर बड़ा बिगड़ा और हमारा असबाब उठाकर बाहर फेंकने लगा। किसी प्रकार उसको मनाया, मिन्नत खुशामद की, उसे भी रोटियां दी, तब वह धूर्त कहीं शान्त हुआ। जिस दारिमा वाले

व्यापारी ने झब्बू किराये करा देने में सहायता की थी वह भी 'बखसीश' मांगने आया। किसी प्रकार उसको भी रफादफा किया। आज दिनभर वर्षा होती रही। रात को उसी मन्दिर में सोए।

मानसरोवर प्रस्थान

३ अगस्त मंगलवार—साढ़े आठ बजे के बाद 'बूभी' ने चलने की तय्यारी की। चल पड़े। सामने मैदान में नदियों की भरमार है। दो दिन जो वर्षा होगई थी, उसके कारण पर्वतों से जल उमड़ आया था। बरसात में तो दरचन से राक्षस ताल तक एक खासी बड़ी झील बन जाती होगी। यदि पिछली रात वर्षा बन्द न रहती तो आज हम किसी प्रकार मान-सरोवर नहीं जा सकते थे। नदियों को लांघते, धाराओं को पार करते हुये निकल गये। सूखे ऊंचे मैदान में पहुंचे, यहां दारिमा वाले व्यापारिओं के कुछ पाल खड़े थे। उनसे मिले। एक व्यापारी के १२०० रुपये चोरी होगये थे; वह ग़रीब बड़ी दीनता से चोर के पता लगाने में मेरी मदद मांगने लगा। उसने समझा कि शायद यह साधू ज्योतिष विद्या द्वारा उस चोर का पता लगा सके। मैंने उसे बहुतेरा समझाया कि मुझमें यह योग्यता नहीं, लेकिन उसे विश्वास नहीं हुआ। उस दुखी पर मुझे बड़ी दया आई लेकिन मैं कर क्या सकता था।

सामने राक्षसताल सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था। उसी की ओर बढ़े। रास्ते में पानी की दिक्क़त रही। 'बूभी' राक्षसताल के पास नहीं जाना चाहता था, क्योंकि उसके बिलकुल निकट जाने से पांच चार मील का फेर पड़ जाता और मानसरोवर पहुंचने में रात हो जाती, इस लिये राक्षस

ताल से डेढ़ मील फासले पर जो पगडण्डी मानसरोवर जाती है उसी को धर कर चले। आज भी डाकुओं का बड़ा भय था और रास्ता उजाड़ बियाबान! इधर उधर देखते हुये, बड़ी तेज़ी से बढ़े चले गए। मेरे पाओं को रस्सी ने काट दिया था, चलने में कष्ट होता था, तो भी क्या, उन्हीं टाट के तलों को फिटफिटाता हुआ आगे बढ़ा। मेरे दहिने हाथ डेढ़ मीलपर राक्ष-सताल लहरें मार रहा था; उसका दृश्य देखते हुए एक घास के मैदान में घुसे। मैं सब से पीछे रह गया। यहां रास्ता पह-चानना दुस्तर है; अनजान आदमी कहीं का कहीं निकल जाय। 'बूझी' तो झब्बू पर सवार था इस कारण उसे रास्ते की कठि-नाई क्या मालूम होती; उसने हम लोगों की कुछ भी परवाह नहीं की। मरता क्या नहीं करता, लाचार होकर उसके पशुओं के साथ साथ भागना पड़ा। अत्यन्त कष्ट सहकर मानसरोवर के निकट पहुंचे। पांच बज गये थे। एक नाला सा सामने दीख पड़ा। मैंने उसके जल से प्यास बुझाने की ठानी किन्तु 'बूझी' ने मना कर दिया। बाद में पता लगा कि उसका जल नमकीन और हानिकारक है।

इस नमकीन नाले के पास ऊंचे टीले पर चढ़े। यहां गरम जल के चश्मे हैं उन्हीं के पास गुफा में डेरा डाला। थकान के मारे मुझसे चला नहीं जाता था; पाओं में छाले पड़ गये थे। वहीं गरम जल से मैंने अपने पाओं को धोया, तत्पश्चात मानसरोवर देखने के लिये चला।

——:o:——

मानसरोवर

गुफा से थोड़ी चढ़ाई चढ़ने पर मानसरोवर के पुनीत दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। जिस मानसरोवर की महिमा बालकपन से सुना करता था; जिसके दर्शनार्थ भारत की करोड़ों आत्मायें लालायित हैं, जिसको देखने के लिये योरप के धुरन्धर विद्वान दूर दूर से आते हैं, जिसकी नैसर्गिक शोभा की प्रशंसा सब विदेशियों ने मुक्त कंठ से की है, उस मानसरोवर के दर्शन कर मैंने अपने आपको करोड़ों बार धन्य माना।

पाठक! पूर्व की ओर मुंह कर अपने आपको एक पहाड़ी पर खड़ा कीजिये। वह पहाड़ी टूटी दीवार की तरह ऊंची नीची आपके दहिने बायें चली गई है। आपके पीछे सूर्य देव अपने दिन का कार्य पूराकर धीरे धीरे अपनी शक्तियों को समेट रहे हैं। कृपाकर अपनी दृष्टि दौड़ाइये। आपके सामने सत्तर* मील परिधि की एक बृहत् झील है। उसके चारों ओर पर्वत-मालाएं हैं। है। यह देखिये दक्षिण की तरफ मान्धाता पर्वत की बर्फानी चोटिओं का प्रतिबिम्ब जल में कैसा मनोहर दीख पड़ता है। सामने, झील के पूर्वी किनारे पर, नीले पर्वतों की कतार कैसी शोभा बढ़ा रही है। उत्तर में कैलाश जी अपने साथी संगियों के साथ बिहार कर रहे हैं। सरोवर का जल नीला नीला आंखों को क्या ही सुख देता है। वह देखिये, राजहंस, श्वेत बिलकुल श्वेत, अपनी सुन्दर पतली चोंचों से जलमें क्रीड़ा कर रहे हैं। उनका आलाप सुनिये; मस्ताना चाल

---

*अङ्गरेज़ी लेखकों ने मानसरोवर की परिधि पैंतालीस मील लिखी है लेकिन परिक्रमा करने वाले भुटिया लोग इसको सत्तर मील से कम नहीं मानते।
—लेखक

देखिये ; स्वच्छन्दता का विचरना निहारिये; किस निर्भयता से ये बातें कर रहे हैं। क्या इनको किसीका डर है ? बिलकुल नहीं। यहां इन्हें पूरी स्वतन्त्रता है, किसी शिकारी के निशाने का भय नहीं। ये मनुष्यों की तरह बातें करते हैं, कैसी बड़ी आवाज़ है, इनके झुंड जलपर क्या मज़े में तैर रहे हैं। आहा ! हा !! हा !!! क्या ही अनुपम छवि है।

*   *   *   *   *   *

अब संध्या होना चाहती है। आइए चलें, कल सवेरे इस पवित्र सरोवर में स्नान कर अपनी यात्रा सफल करेंगे।

लौटकर गुफा में आगये। सत्तू खाकर पेट पूजा की। इस गुफा में बिस्तरे लगा दिये; सारी रात होश नहीं रहा।

४ अगस्त बुधवार— भोर होते ही गुफा से निकले। 'बूझी' ने झब्बुओं पर असबाब लादा और चल पड़े। मानसरोवर के किनारे किनारे चार मील तक चले गए। एक स्थान पर किनारा स्नान करने योग्य था, वहीं ठहर गये। सामने भास्कर महाराज खिले चेहरे से हंस रहे थे। निर्मल, स्वच्छ जल की लहरें मेरे पांओं के पास खेल रही थीं। यह दिन भी मेरे जीवन में बड़े पुण्य का था। कपड़े उतार दिये; मानसरोवर के शीतल जल में प्रवेश किया। आज बहुत वर्षों की इच्छा पूर्ण हुई, परमात्मा को बार बार धन्यवाद दिया। झील बहुत गहरी है; जल बिलकुल साफ़ है।

यहां हमारी दस बारह चौन्दासी भुटिये यात्रियों से भेंट हुई। इनमें स्त्रियां अधिक थीं। ये लोग तकलाकोट के लीपू-लेख घाटे से तिब्बत में आए थे। इनकी इच्छा श्रीकैलाश दर्शन की थी। मैंने इनसे तकलाकोट के समाचार पूछे। तकलाकोट वाला घाटा, जोहारी कुंगरोबिंगरीवाले घाटे जैसा

भयानक नहीं, यह केवल साढ़े सोलह हज़ार फीट ऊंचा है। मेरी इच्छा भी पहले इसी रास्ते तिब्बत प्रवेश करने की थी, किन्तु बागेश्वरी व्यापारियों के कहने से मैंने अपना प्रोग्राम बदल दिया था। इन धर्मात्मा चौन्दासी स्त्रियों ने सत्तुओं से हमारी सहायता की।

स्नान ध्यान से निवृत्त होकर दक्षिण दिशा की ओर मुंह किया*। बूझी आगे बढ़ गया था। सामने ऊंची घास से लदी हुई पहाड़ी पर चढ़े। तीन चार मील चलकर उस पहाड़ी से पूर्व की ओर रास्ता घूमता है। यहां पत्थरों का ढेर है। यह ढेर भुलकड़ यात्रियों को रास्ता बतलाता है। यहां खड़े होकर मानसरोवर की तरफ पुनः दृष्टि दौड़ाई। झील का दृश्य यहाँ से और भी बढ़िया है। मीलों लम्बे हरे हरे मैदान मानसरोवर के इर्द गिर्द हैं, जहां हज़ारों भेड़ बकरी मज़े में चर सकते हैं। दहिने हाथ की तरफ राक्षसताल की सुन्दरता भी कम नहीं, यहां खड़ा हुआ मनुष्य दोनों सरोवरों की बहार मज़े में देख सकता है। श्री कैलाश जी से मानसरोवर आने में भूमि नीची होती जाती है और मानसरोवर अधित्यका १५००० फीट की ऊंचाई पर है, इसका फैलाव बहुत दूरतक है। मानसरोवर से तकलाकोट की ओर जाने में फिर ऊंचाई शुरू होती है।

यहां मैं और एक प्रेमी रास्ता भूल गये। 'बूझी' न जाने कहां चल दिए। दोनों जने इधर उधर भटकते रहे। आज मेरे पाओं में दर्द था। धूपमें चलने से प्यास लग गई। राक्षस-

*डाकुओं के कारण अधिक ठहरना उचित नहीं समझा। यदि मेरे पास शस्त्र, काफी भोजन का सामान तथा खेमा आदि होता तो यहां पांच दस दिन अवश्य ठहरते। दुबारा जब जाऊंगा तो सब प्रबन्ध ठीक रहेगा—लेखक

ताल के किनारे आकर उसका जल पिया यहां ताल के किनारे हुणिश्रों के खेमें गड़े थे; उनसे तकलाकोट का मार्ग पूछा। उनके बतलाने पर पूर्व की ओर मुंह कर चल दिये। एक बज चुका होगा। दहिने हाथ घास का मैदान है और बाएं हाथ बर्फानी पहाड़, यही मान्धाता पर्वत है, इसी के साथ साथ जा रहे हैं। बड़े चक्कर काटने पड़े; ऊंचे नीचे मैदानों को तै किया; पांव छलनी होगये; नंगे पैर चलना पड़ा; रस्सिओं ने पावों में घाव कर दिये।

गुरला मान्धाता पर्वत के पास

संध्या होगई। पत्थरों से भरी हुई करनाली नदी के गल के पास एक चौड़े मैदान में पहुंचे हैं। करनाली यहां अपने वर्फानी घर से निकल कर मैदान में आई है। इसको पार कर इसके दूसरे किनारे पर रात काटनी थी। शीत वर्फानी जल में पांव डालता हूं, नदी का वेग पाओं के ज़ख्मों में नमक का काम करता है। पांव उखड़ते हैं, इनको अपनी मानसिक शक्ति से पत्थरों पर जमाता हूं। एक धार पार कर ली. दूसरी में अधिक जल है; परब्रह्म का नाम लेकर इसमें पांव रखता हूं; बर्फानी जल पांओं को काट रहा है; उनको सुन्न कर रहा है। लकड़ी को ज़ोर से दबाकर पांव उठाता हूं। धीरे धीरे, एक कदम दो कदम, नदी पार करता हूं। सामने घास की ओट में 'बूभी' चाय बना रहा है; वहीं रात काटनी है।

रात को करनाली के किनारे रहे। यह रात भी कभी न भूलेगी। गुरला की वर्फानी चोटियां चमक रही हैं। रात को रोटी बनाकर खाई। घुटने जोड़कर लेटगया; सरदी के मारे नींद नहीं आई। कपड़े ओस से भीग गये हैं। शुभ्र चांदनी छिड़कने

लगी है। आहा! चन्द्रदेव के दर्शन हुए; क्या ही रम्य दृश्य था। मैं टो बैठा इसी को देखता रहा, नदी की गड़गड़ के सिवाय झब्बुओं के जुगाली करने की आवाज़ आती है, साथियों में से कोई खुर्राटे भर रहा है। चन्द्रदेव धीरे धीरे हलके पड़ रहे हैं; सूर्य भगवान की सवारी आ रही है। कुछ प्रकाश हुआ; चलने की तैय्यारी कर ली।

तकलाकोट पहुंचते हैं।

५ अगस्त रविवार—आज कई नदियां पार कीं। करनाली की सहायक नदिओं का आनन्द देखते हुए कभी ऊंचे कभी नीचे के चढ़ाव उतार पूरे करते हुये, ग्यारह बजे के बाद एक पहाड़ी नाले के किनारे पहुंचे। यहां कुछ नाश्ता किया। फिर चले। कंकड़वाले मैदान तै कर लिये, अब नीचे उतर रहे हैं। दो बजे के करीब करनाली की घाटी में पहुंचे। यहां पहली बार लहलहाते खेत देखने में आए। जौ का खेत लहरें मार रहा था। छोटी छोटी नहरें काट कर स्थान स्थान पर भूमि सींची गई है। इधर उधर चारों तरफ हरे भरे मटर के खेत दिखाई देते थे। नीचे नीचे उतर रहे हैं; बहुत नीचे आगये। गुरला के १६००० फीट ऊंचे घाटे से चले थे, धीरे धीरे १३००० फीट तक आगये होंगे। छोटे छोटे ग्राम सामने हैं। हुणिओं की औरतें खेतों में काम कर रही हैं। ग्राम के बाहर भूत भगाने के सामान हैं; 'ओम माने पदमे हुं' की कतारें लगी हैं; झंडियां गड़ी हैं; मूर्तियाँ भी बनाई हुई हैं।

चार बजे के बाद तकलाकोट की पहली मण्डी में पहुंचे। यहां हज़ारों भेड़ें जमा थीं, दुकानें लगी हुई थीं। हमने रुकना उचित नहीं समझा। एक कठिन चढ़ाई चढ़ने के बाद दूसरी मंडी में पहुंचे। यहां श्रीलालसिंह जी के यहां ठहरने का प्रबन्ध

किया। भोजन बनाकर खाया, और मुर्दों की तरह सो रहे।

तकलाकोट

मान्धाता पर्वत के ठीक नीचे तकलाकोट मण्डी है। व्यास, चौंदास, दारिमा नैपाल के व्यापारी इस मण्डी में अपना माल बेचने आते हैं। इधर के भारतीय घाटे का नाम लीपू लेख है। तकलाकोट से यह सात मील पर होगा। यह मण्डी यहां की तीन नदियों के संगम पर बसी है और इसके तीन तरफ ऊंची पहाडियां हैं। भूमि अत्यन्त फलदा है। नदियों के जल का नहरों द्वारा सदुपयोग किया गया है, चारों ओर भूमि सींचकर अन्न बोया जाता है। जहां जल नहीं पहुंचा वहां की भूमि तो गंज रूप धारण किये बैठी है। वर्षा इधर अधिक नहीं होती, जो कुछ अनाज उत्पन्न होता है वह सिंचाई द्वारा ही होता है।

तकलाकोट के ज़िले में सैंतीस ग्राम है। ये नदिओं के किनारे बसे हैं। यहां के घर पत्थर के होते हैं ऊपर से मिट्टी पुती रहती है; काम लायक अच्छे होते हैं। प्रत्येक ग्राम के पास जौ और मटर के खेत देखने में आए। श्रीखोचरनाथ* मठ की ओर रास्ते में बराबर हरियाली ही हरियाली है। भूमि बड़ी उपजाऊ है। वृक्षों का सर्वथा अभाव न जाने क्यों है? जिस भूमि में जौ और मटर हो सकते हैं वहां फलों के वृक्ष क्यों न होंगे; मालूम होता है किसी ने यत्न ही नहीं किया।

भुटिए लोगों ने अपने घर दीवारें खड़ी कर बनाये हुए हैं; ऊपर से कपड़े तान लेते हैं। जब मण्डी का ऋतु होचुकता है तो कपड़े की छतों को उखाड़कर अपने अपने

*श्री खोचरनाथ मठ तकलाकोट से छः सात मीलपर है। यात्री एकही दिन में उसे देख आ सकता है—लेखक

घर ले जाते हैं। दीवारें खड़ी रहती हैं। बहुत से घर गुफाओं के अन्दर हैं। जहां जिसको थोड़ी बहुत सुविधा मिली है, वहीं उसने खोदखाद, लीप पोत, घर का स्वरूप खड़ाकर लिया है। ग्यानिमा से यह मण्डी बहुत अच्छी जगह पर है, यहां न तो उतनी सरदी ही है और न हुणिओं का उतना जङ्गलीपन, करनाली नदी इनकी बहुत कुछ सफाई करदेती है। नदी के दोनों तरफ ऊंचे किनारे हैं। इन्हीं किनारों पर, चौरस भूमि में तकलाकोट की रौनक के सामान है।

यहां एक मठ है जहां लामा लोग अपने चेले चेलिओं के साथ रहते हैं। छोटे छोटे लड़कों को चेला करते हैं। उनके सिर मूंड़ कर उनका नाम 'चुंग चुंग' धरते हैं। सोलह वर्ष की अवस्था में उन लड़कों की परीक्षा लेकर उपाधियां दी जाती हैं। जो ब्रह्मचर्य्य का कठिन व्रत लेकर दीक्षित होते हैं उनको 'गिलो' कहते हैं। साधारण लामाओं को कठोर नियमों का पालन नहीं करना पड़ता, ऐसे लामा तिब्बती भाषा में दाबा कहलाते हैं।

तकलाकोट से दो मील के फासले पर टोओ नाम का ग्राम है। यहां सरदार ज़ोरावरसिंह की समाधि है। १८४१ में कश्मीर नरेश गुलाबसिंह जी की आज्ञा से सिक्ख सेना नायक ज़ोरावरसिंह ने १५०० सैनिकों को साथ लेकर तिब्बत पर हमला किया था। कैलाश जी के पास बरखा के मैदान में उस शूरवीर ने ८००० तिब्बतियों को पराजित कर तकलाकोट में आकर डेरा जमाया। बाद में चीन सरकार ने तिब्बती लामाओं की सहायता के लिये फौज भेजी। ज़ोरावरसिंह, अपने बहादुर कप्तान बस्तीराम के सुपर्द अपनी फौज कर आप मुट्ठी भर आदमियों के साथ अपनी धर्मपत्नी को लद्दाख

छोड़ने चला गया ताकि लौट कर निश्चिन्तता से युद्ध कर सके। यही उसके नाश का कारण हुआ। चीनी फौज तिब्बतियों की मदद के लिये आ पहुंची और उसने ज़ोरावरसिंह को रास्ते में आघेरा। इतनी बड़ी फौज के सामने मुट्ठी भर आदमी क्या कर सकते थे, सब घिर गये और उनकी बोटी बोटी नोच ली गई।

अब बस्तीराम के लिये क्या रहगया, वह अपने साथियों के साथ भारत की ओर भागा। सामने लीपूलेख बर्फ से ढका था उसको पार करने में बहुत से सिक्ख सिपाही वीरगति को प्राप्त हुये; थोड़े से असह्य कष्ट झेलकर जीते घर पहुंचे। और दूसरों का देश छीनने के पाप को आजन्म न भूले।

उसी सिक्ख सेना नायक ज़ोरावरसिंह की समाधि टोओ में है। तिब्बती लोग उस भारतपुत्र के वीरत्व की अब तक प्रशंसा करते हैं और उसकी समाधि को पूजते हैं।

मंडी में मैं छः अगस्त से नौ अगस्त तक रहा। अपने थके हुये शरीर को आराम दिया, भुटिए;भाइयें को उपदेश भी सुनाया। इन में शिक्षा का बिलकुल अभाव है, शराब व्यभिचारादि दोष अधिक हैं। ये लोग हिन्दूधर्म से दूर हैं; इनमें तिब्बतीपन अधिक घुसा हुआ है।

ग्यानिमा मंडी की तरह यहां भी भुटिए व्यापारी हुणिओं के साथ माल का अदल बदल करते हैं। मानसरोवर के इर्द गिर्द घास के बड़े बड़े मैदान हैं इस लिये अधिकांश ऊन उधर से आती है। तकलाकोट के महाजन इस ऊन को खरीदकर टनकपुर भेजते हैं। वहां बम्बई, कलकत्ता, कानपुर, धारीवाल आदि नगरों में स्थित पुतलीघरों के एजन्ट सरदियों में इकट्ठे होते हैं; तिब्बती ऊन यहीं खपती है।

आजकल मंडी ज़ोरोंपर थी, खूब माल विक रहा था। श्री-लालसिंह जी होशियार व्यापारी हैं; इनकी साधु महात्माओं पर भी बड़ी श्रद्धा है। आपके यहां ठहरने से मुझे सुख मिला, इसके लिये उनका मैं बड़ा कृतज्ञ हूं।

१० अगस्त मंगलवार—खच्चर की सवारी का प्रबन्ध कर लिया था। आठ बजे सवेरे चल पड़े। नदी पारकर दक्षिण दिशा की ओर चले। रास्ते में पांच चार मील तक मख़मली हरियाली आंखों को आनन्दित करती है। स्थान स्थान पर छोटी छोटी नालियां खोद कर पानी खेतों में पहुंचाने का प्रबन्ध है। सामने हिमालय है—इस तरफ तिब्बत और उस ओर प्यारा भारत–बढ़े चले गये। एक पथ-प्रदर्शक मेरे साथ था। हिमाचल के निकट पहुंचने पर ज़ोर की वर्षा आध घंटा भर हुई; नदी चढ़ गई; खच्चर ने उसको कठिनाई से पार किया।

अब लीपूलेख की ओर चलते हैं। एक छोटी नदी के किनारे किनारे ऊपर ऊपर चढ़ रहे हैं। रास्ते में कई जगह भुटिये चरवाहे पशु चरा रहे थे। ऊपर चढ़ते हैं। हिमाचल पर बादल छाया हुआ है। सामने ऊंचे दाहिने हाथ नदी का ग्लेशियर है। खच्चर पर से उतर कर पैदल चढ़ रहा हूं। बाईं तरफ ऊंचे पर्वतों पर धुन्ध अपनी अठखेलियां दिखा रही है। गल पर पहुंच गये। यह छोटा ग्लेशियर है, इसको लांघ कर बाईं ओर चलते हैं। दोनों ओर गलही गल है, सीधे जा रहे हैं। थोड़ी दूर जाकर दहिने हाथ ऊंचे चढ़ना है। उधर दृष्टि डालने से दरवाज़ा सा मालूम होता है। यही घाटा है। खच्चर पर सवार आहिस्ते आहिस्ते ऊपर चढ़ रहा हूं; पथप्रदर्शक ऊपर पहुंच गया। मैं भी खच्चर को

चलने के लिये कहता हूं। चला, दस कदम और बाक़ी हैं; ऊपर लीपूलेख घाटे पर पहुंच गया।

तिब्बत की ओर एक दृष्टि।

१६७५० फीट ऊंचे इस घाटे पर खड़ा हूं। मेरे दहिने हाथ की ओर जो उतार है यह मातृभूमि की सीमा का आरम्भ है; बायें हाथ का उतार, जिसको चढ़कर आया हूं, तिब्बत की ओर जाता है। इधर ही एक दृष्टि दौड़ाता हूं। उत्तर पूर्व तरफ़ मान्धाता की चोटियां अपनी शान दिखा रही हैं। यहां कुंगरीबिङ्गरी जैसी भयानक सरदी नहीं। अपनी यात्रा पर विचार करता हूं।

कुंगरी बिङ्गरी घाटे द्वारा पश्चिमी तिब्बत में प्रवेश करने के बाद भोजन के कैसे कैसे कष्ट झेलने पड़े, लेकिन मेरी यात्रा का मूल्य मुझे मिल गया—मैंने वे दृश्य देख लिये जो संसार में अद्वितीय हैं। जिस तिब्बत का नाम ही सुनते थे उसे देख लिया, जिन लामाओं की कथा पढ़ते थे उनसे भेंट करली; जिस कैलाश जी के गुणानुवाद पुराणों ने गाए हैं उसके साक्षात दर्शन कर लिये; जिस मानसरोवर की महिमा योगी लोग बखानते हैं उस की सुन्दरता देख ली; उसमें स्नान भी कर लिया; पाओं को बेशक़ बड़ा कष्ट हुआ परन्तु वह कष्ट थोड़े ही दिनके लिये था। तिब्बती दृश्यों की शोभा का आनन्द सारी आयु न भूलेगा।

वाहरे तिब्बत! तूभी एक विचित्र देश है। संसार में सब से ऊंचा और सब से निराला है। क्याही अच्छा हो यदि तेरे बच्चे भी जाग उठें और संसार की गति के अनुसार अपने जीवन को बनालें। मेरी बड़ी इच्छा तेरे एक सिरे से दूसरे सिरे तक

घूमने की है। मैं मानसरोवर के किनारे महीनों रहना चाहता हूं, किन्तु तेरी वर्तमान स्थिति में ऐसा करना असंभव सा है। जब तक चीन और भारतवर्ष सोते हैं तू भी तब तक खुर्राटे ही लेता रहेगा ; चीन और भारत के भविष्य पर तेरा भी भविष्य निर्भर है।

तू धातुओं से परिपूर्ण तो है पर वे तेरे लिये कुछ लाभदायक नहीं। तेरे बच्चे मुश्किल से पेट पालते हैं। तेरे यहां जब तक शिक्षा ज़ोर शोर से न फैलेगी तब तक तेरी संतान की दशा भी सुधर नहीं सकती।

बुद्धदेव ने जो धर्म तेरे बच्चों को सिखलाया था वह बड़ा शुद्ध और निर्मल है। जब तेरे शिक्षक भारतवर्ष की धार्मिक अवस्था बिगड़ गई, तो तू कैसे अच्छा रह सकता था, अब भारत की दशा बदलने लगी है। क्या भारतपुत्र अपने प्यारे शिष्य तिब्बत को भूल जायँगे ? कभी नहीं। तिब्बत पर हमारा धार्मिक अधिकार है; हमें तिब्बत को धर्म सिख-लाना है। हमें अपने पूज्य तीर्थों—श्री कैलाश और मानसरो-वर—पर अपने धार्मिक झण्डे गाड़ने चाहियें। आवश्यकता है कि यहां हमारे मठ बनें, और हमारे धर्मोपदेशक अपने पुराने काम को नये उत्साह के साथ आरम्भ करें। क्या भगवान बुद्ध का परिश्रम वृथा ही जायगा ? कभी नहीं।

आर्य संतान ! उठो, भगवान शक्य मुनि के पदों का फिर अनुसरण करें, तिब्बत हमारी बाट जोह रहा है ; वह आर्य सभ्यता से परिष्कृत होना चाहता है। आओ, एकबार फिर तिब्बत में आर्य्यसभ्यता का डंका बजावें।

चतुर्थ खण्ड

——:o:——

भारत में प्रवेश

१० अगस्त मङ्गलवार—तीन बजे के करीब भारत में प्रवेश किया। हिमालय का यह द्वार लीपूलेख बड़े सुभीते का है; उतार की पगडण्डी नदी के किनारे किनारे चली गई है। यद्यपि उतार कहीं कहीं कठिन है मगर मार्ग में किसी प्रकार का भय नहीं लगता। न इधर ऊंटाधुरा जैसे ग्लेशियर ही हैं, और न वैसी विकट चढ़ाई—सुन्दर, सुहावनी हरियाली को देखता हुए यात्री मज़े में चला जाता है। काली नदी यहीं से निकलती है; इसकी धार यहां बिल्कुल छोटी सी है।

घाटी में खच्चर पर चढ़ा हुआ जा रहा हूं, पथप्रदर्शक साथ है। दोनों ओर पहाड़ी दीवारों पर कहीं कहीं हिम पड़ी है; वह पिघल पिघल कर नीचे आरही है। रास्ते में व्यापारी लोग जाते हुए मिले। इधर इस घाटे में जगह जगह धर्म-शालाएं हैं, ठहरने के स्थान बने हैं। पहाड़ी धर्मशाला मामूली एक मंज़िल की, पत्थरों से छाई हुई, छोटे छोटे दरोंवाली होती है। दरों में किवाड़ नहीं लगाए जाते; जितने दर उतनी ही कोठरियां बनी रहती हैं। उनके बनाने में पहाड़ी तेज़ हवा से बचने का ध्यान रखा जाता है। छत्तों की ऊंचाई इतनी कम होती है कि मनुष्य कोठरी में सीधा खड़ा नहीं हो सकता, साथही कोठरियां तङ्ग भी बनाई जाती हैं ताकि उनके गरम रखने में अधिक ईंधन की ज़रूरत न पड़े।

आज शाम को काली के किनारे ऐसी ही धर्मशाला में डेरा किया। एक यात्री उस धर्मशाला में पहले से ठहरा हुआ

था। उस ने रोटी बनाई। पेट पूजा कर आनन्द से सोरहे।

११ अगस्त बुद्धवार—कालापानी ग्राममें पहुंचे। यहां कई चश्मों से जल निकल निकल कर काली में गिरता है। भुटिए इन चश्मों के जल को कालीका स्रोत समझ यहां बड़ी श्रद्धा से स्नान करते हैं। काली के किनारे किनारे जारहे हैं। काली नदी अल्मोड़ा ज़िले को नैपाल से अलग करती है—इस तरफ अल्मोड़ा है और नदी पार नैपाल—इधरसे अपराधी उधर नैपाल के जङ्गलों में भाग जाते हैं। नदी का पाट तो बड़ा छोटा है किन्तु स्वरूप चामुण्डा जैसा है। अब हमको बराबर इसके किनारे बड़ी दूर तक जाना है। जैसे गोरी ने जोहार का रास्ता पर्वतों को काट कर बनाया है ऐसे ही कालीने इधर के पर्वतों को फोड़ कर बड़ी मुश्किल से अपना मार्ग निकाला है। आज कई दिनों के बाद देवदारू के वृक्षों की कतारें देखने में आई; हिमालय के वन्य दृश्य फिर आरम्भ होगये। तिब्बत की रुंड-मुण्डता दूर हो गई। चित्त में कैसी प्रसन्नता होती है। वृक्षों की डालियां समीर के झोंकों से आनन्दित हो पहाड़ी राग गारही हैं। अपने हितकर, अपने अनुकूल जल वायुमें आगए, यह बड़ा सुखदायी है। पवन के झकोरों में पास के पहाड़ी खेतों की सर सर ध्वनि सुनता हुआ जारहा हूं। मातृ भूमि किस प्रेम से स्वागत कर रही है; अपने बच्चे को गोद में ले रही है। आहा! इस आल्हाद का क्या वर्णन करूं।

तकलाकोट से गर्ब्याङ्ग २६ मील है। आज मुझे वहीं जाना था। आधे से अधिक मार्ग तो पहले दिन ही आचुके होंगे, आज का रास्ता आसान, दृश्य मनोहर, निर्मल आकाश, अनुकूल जलवायु—हंसता हुआ जा रहा था। तिब्बत से कुशल पूर्वक लौट आया, इसको स्मरण कर फूला न समाता था। जो उद्देश्य

था वह होगया। सच है किसी कार्य की सफलता का आनन्द भी बिलकुल निराला ही होता है।

गर्ब्यांग

मध्यान्ह के बाद गर्ब्याङ्ग के पास पहुंचे। यहां काली नदी का पुल पार कर ग्रामकी तरफ आगये क्योंकि आज हम काली के नैपाल वाले किनारे किनारे आए थे। गर्ब्याङ्ग इस ओर का आखिरी पोस्ट आफिस है जैसे जोहार की तरफ मनस्यारी सबसे आखिरी डाक घर है, ऐसे ही इधर गर्ब्याङ्ग है। काली नदी का पुल पारकर ऊंची चढ़ाई चढ़ने के बाद गर्ब्याङ्ग पहुंच गए। यहां मेरे इधर आने की सूचना कई प्रेमियों को पहले से थी इस लिये कोई कष्ट नहीं हुआ। रहने का ठीक ठाक कर लिया।

गर्ब्याङ्गकी अधित्यका (प्लेटो) समुद्री तल से दस हज़ार फीट की ऊंचाई पर है, अल्मोड़े से साढ़े चार हज़ार फीट ऊंचा समझिये। लीपूलेख घाटे द्वारा तिब्बत में प्रवेश करने वाले व्यापारियों का यह मुख्य स्थान है इस लिये यहां अनाज तथा अन्य विक्रियार्थ वस्तुओंका संग्रह किया जाता है। व्यास चौन्दास के लोग यहां आकर ठहरते हैं, और यहीं के पोस्ट-आफिस द्वारा उनका रुपया तिब्बत में जाता आता है। मई से अक्तूबर तक यहां स्कूल और डाकाखाना आदि रहते हैं। जाड़ों में भोटिये लोग नीचे धार चूला में चले जाते हैं। यहां अच्छे पक्के दृढ़ घर बने हैं। लोगों की आर्थिक दशा अच्छी है। इनके चेहरे भी मंगोलियन हैं। अंग प्रत्यंग खूब मज़बूत होते हैं। सभ्यता का प्रभाव धीरे धीरे होरहा है। समाचार पत्र आते हैं। यहां के विद्यार्थी अल्मोड़ा पढ़ने जाते हैं। लोग

बड़े उत्साही हैं। कुछ वर्षों बाद शिक्षा फैलने से इनके आचार व्योहार अच्छे हो जायेंगे अभी तो तिब्बतियों की संगत से जहालतकी टोकरी विद्यमान है। गलियां गन्दी, स्कूल के आस पास गन्दा, मकानों के आंगन गन्दे, कहां तक कहूं, सफाई के तो यह लोग मानो दुश्मन हैं!

यहां मैं तीन दिन रहा। मेरा स्वास्थ्य कुछ बिगड़ गया था, खाना पचता नहीं था। तकलाकोट में एक दिन मैंने मोटे बड़े बड़े उड़द बनवा कर खाए थे। उस ऊंचाई में भला मोटे उड़द कैसे पक सकते हैं, मैं उनको कच्चे ही खागया, उसी भूल का दण्ड भरना पड़ा। एक सप्ताह भर मुझे अजीर्णता की शिकायत रहा, इसके बाद फिर अच्छा होगया।

१४ अगस्त शनीवार—गर्ब्याङ्ग के आगे निरपनियां का बड़ा विषम और दुर्गम पथ है। आज कल वर्षा के कारण उसने भीषण रूप धारण किया था। कोई कुली मेरा असबाब उठाकर साथ जाना नहीं चाहता था। एक प्रेमीकी सहायता से कुली का ठीकठाक किया। आज भोजनोपरान्त चल पड़े।

गर्ब्याङ्ग से बुदी चारमील है। आज वहीं रात काटने की सलाह थी। ग्राम से निकलते ही उतार आरम्भ हो जाता है, बुदी तक कठिन उतार है। तीन घंटे में मार्ग तै किया; बुदी के स्कूल में ठहरे; स्कूल के अध्यापक महाशय ने भोजनादि का यथोचित प्रबन्ध कर मुझे अनुगृहीत किया। रात यहीं रहे।

मालपा

१५ अगस्त रविवार—सवेरे चले। बुदी से मालपा तक रास्ता ख़राब है; वर्षा के कारण रास्ता स्थान स्थान पर टूटा

हुआ मिला। काली नदी काटखाने को दौड़ती है; उसीके किनारे किनारे जाना था। दो तीन जगह ऐसे जलप्रपात मिले जो यात्रीके ठीक सिर पर गिरते हैं। ऊपरसे जलप्रपात, नीचे काली का भयंकर नाद, गज़ भरके करीब चलने की जगह और उस पर भी काई जमी हुई. ऐसे पथ पर चलने वाले यात्री की मानसिक परिस्थिति क्या होगी? इसका अनुमान पाठक स्वयं लगालें।

१२ बजे के क़रीब मालपा पहुंचे। यहां चट्टान के ऊपर घास की एक झोंपड़ी है, इसीमें डाकखाने के हरकारे लोग ठहरते हैं। इनका काम मालपा से गर्ब्याङ्ग तक डाक पहुंचाना है। मालपा से गलागाड़ आने जाने वाले हरकारे भी यहीं ठहरते हैं। काली नदी के ठीक किनारे पर इनकी झोंपड़ी है। नदी की सारी लीला यहां से दिखाई देती है। एक दूसरा पहाड़ी नाला यहां काली में मिलता है। आज यह बड़े ज़ोरों पर था। मैंने बहुतेरा यत्न इसके पार करने का किया मगर सफलता न हुई। बहुत अधिक जल इसमें न था, मुश्किल से मेरी कमर तक होगा पर धक्के गज़ब के देता था। जहां से मेरी इच्छा इसे पार करने की थी वहां से काली पांच गज़ पर होगी; ज़रा सा पाओं के उखड़ने की देर थी, बस फिर तो पार करने वाले का अन्त ही समझिये।

इस तंग घाटी में खड़ा छटपटा रहा हूं। मेरे दहिने हाथ पहाड़ी नाला बड़े वेग से चट्टानों पर से कूदता हुआ आरहा है, बायें हाथ काली बड़ी निर्दयता पूर्वक चट्टानों का संहार कर रही है; उस संगम पर मैं ऊंचे पत्थर का आश्रय लिए खड़ा हूं। मेरी कुछ भी पेश नहीं जाती, जल मेरा रास्ता रोक रहा है। सामने पहाड़ी नाले के पार गालागाड़ से आने वाला

हरकारा बैठा है। वह बेचारा भी क्रोध से पहाड़ी नाले की ओर देख रहा है। नाले ने लकड़िओं के पुल को तोड़ डाला है। आज पुल नहीं बन सकता; कल बनाया जायगा।

पाठक, आप शंका करते होंगे कि पहाड़ी नाले ने पुल कैसे तोड़ डाला? कृपया ज़रा इधर के पुलों का चित्र तो अपने मन में खींचिए। किसी वृक्षकी बड़ी मोटी लम्बी शाखा को काटकर नाले के आरपार रखदेते हैं, बस यही इधर का पुल है। यदि उसमें कुछ वैज्ञानिक बुद्धि का प्रयोग करना हो तो एक लम्बे काष्ठ की बजाय दो काष्ठ रखदिए, और दोनों के बीच जो खाली स्थान रहा उसको पत्थरों से ढकदिया। ऐसा पुल इधर बड़ा सुदृढ़ समझा जाता है और उसपर हज़ारों रुपए के माल से लदे हुए पशु बेखटके आते जाते हैं। जिस काष्ठ के पुल पर हम लोग पांचदस रुपये मिलने पर भी पाओं न रखें,उस पर भोटिए लड़के बाज़ीगरों की तरह कूदते चले जाते हैं। यह सब अभ्यास की बात है।

आज रात काली के किनारे गुफा में रहे। सारी रात जल बरसता रहा। पिस्सुओं के मारे अच्छी प्रकार सोना नहीं हो सका।

१६ अगस्त सोमवार—भोर होतेही हरकारे लोग नाले का पुल बनाने की चेष्टा करने लगे। मैंने तो एक हृष्टपुष्ट पहाड़ी नवयुवक की मदद से पुल बनाने के पहले ही नाला पार करलिया। थोड़ी देर बाद दो चार आदमिओं ने मिलकर एक मोटे लट्ठे को जल के आरपार रखा। इसी ख़ौफनाक एक-लट्ठे के पुल पर से बाकी सामान पार उतारा गया। पथ-प्रदर्शक के साथ आगे बढ़े। अब निरपनियाँ की विषमता मालूम हुई।

निरपनियां

ऊंचे पर्वत पर चढ़ रहा हूं। रास्ता कहीं गज़भर है, कहीं आध गज़, टूटा हुआ; पाओं फिसलते हैं। ऊपर चढ़ने में पौधों की टहनियां पकड़ पकड़ कर चढ़ता हूं। यदि कहीं भूल से पैर इधर उधर होजाय तो फिर सैकड़ों फीट नीचे घाटी में जाकर हड्डी हड्डी सब टूट जाए। रास्ता कीचमय है; मिट्टी फिसलाऊ है। ऊपर ऊपर जा रहा हूं। इस पहाड़ के ऊंचे शिखर पर पहुंचना है। काली नदी, नीचे, नीचे, नीचे, उसकी मंद मंद आवाज़ आ रही है। यह लो! गड़गड़!! वह सामने बड़ा ढोंका किस तेज़ी से नीचे फिसलता जारहा है; इसकी गर्जना हृदय को कम्पायमान करती है। परमदेव, परमदेव, आपही सहायक हैं।

पहाड़ के ऊपर शिखर पर पहुंचे। यहां से इर्दगिर्द दृष्टि दौड़ाई। बादल कहीं नीचे, कहीं चोटिओं पर विचर रहे थे। पूर्व की तरफ सामने नैपाल के पहाड़ हैं, उनकी चोटियां बादलों से ढ़की हैं। वर्षा इस समय बन्द है। यहां बैठकर सत्तू खाए और कमण्डलु भर जल पिया। पथ-प्रदर्शक चलने को कह रहा है; अभी ऐसे ऐसे दो तीन पहाड़ और पार करने हैं।

चल पड़े। अब नीचे उतररहे हैं। इधर बायें हाथ दृष्टि दौड़ायें तो आंख कहीं ठहरती नहीं, इकदम नीची घाटी है। कमज़ोर दिल मनुष्य को तो यह नीचाई देखकर ही चक्कर आने लगे। जैसे ऊंचे आए थे वैसे ही नीचे जारहे हैं। नीचे जाना ऊपर जाने से भी कठिन है; यहां गिरने का अधिक भय रहता है। एक तो महा कठिन उतार,दूसरे भीगा हुआ रास्ता,

तीसरे बेढ़ब फिसलन, घास पकड़ पकड़कर नीचे उतरता हूं, एक एक इञ्चभूमि के लिए लड़रहा हूं। उतरते उतरते, नीचे काली के किनारे पहुंचगए। अब फिर ऊपर चढ़ना है।

बड़ा भयङ्कर रास्ता है। पुराने मार्ग से, मीलों का चक्कर खाकर जाना है। जो रास्ता अधिकारियों ने बनवाया था उस को नदी बहा ले गई; आज कल पुराने बाबा आदम के समय के रास्ते से सब लोग आते जाते हैं। जिस पथ-प्रदर्शक के साथ में था, उस मूर्खने उस पुराने पथ को भी छोड़कर, ऐसा दुर्गम पथ धर लिया कि जिधर से भेड़ बकरी भी कठिनाई से जासकें। एक सीधी ऊंची चट्टान है; उसकी भीत पकड़, धीरे धीरे जा रहा हूं। यदि इस समय वर्षा होजाय तो मैं निस्सन्देह नीचे घाटी में गिर पड़ूं। बैठ बैठकर चलता हूं; ओ ईश्वर! ऐसा रास्ता!! सारी यात्रा में निरपनियाँ जैसा बेढ़ब पथ नहीं मिला। कई बार गिरते गिरते बचगया; धोखा देने वाला मार्ग है; यहां तेज़ आखों की आवश्यकता है। पथ-प्रदर्शक को पुकार कर साथ साथ चलने के लिए कहता हूं। ओ३म्! ओ३म्!! का जाप करता हुआ जारहा हूं ताकि यदि गिर भी जाऊं तो परमपिता का नाम स्मरण करते हुए प्राण निकलें।

* * * *

इस उतार के अन्त होने पर निरपनियां का भी अन्त हो जायगा। अब नीचे काली के किनारे पर फिर आगए। यहां पथ बिल्कुल टूटा है; पथ-प्रदर्शक की सहायता से किसी प्रकार इसे तै किया यहां से आगे यद्यपि चढ़ाई है पर रास्ता निरपनियां जैसा खराब नहीं। उस चढ़ाई को आरम्भ करने से पहले यहां नदी किनारे बैठकर सत्तू खाये, वर्षा होरही है।

गलागाड़

भीगते भागते चले। चढ़ाई चढ़ रहे हैं। सैकड़ों सीढ़ियां चढ़ गए। दो घंटे के बाद पहाड़ के ऊपर पहुंचे; यहां से गलागाड़ दिखलाई देता है। पौन घंटे के बाद वहां पहुंचगए। यहां का बंगला रुका हुआ था; इस कारण ऊपर एक गृहस्थ के घर के पास ठहरे। खाने, पीने, सोने का प्रबन्ध सब हो गया। कपड़े भीग रहे थे, उनको सूखने के लिए डाल दिया; खूब आग जलाई। रात को पहाड़ों के टूटने और बड़े बड़े पत्थरों के खिसकने की गर्जना सुनते रहे। मुश्किल से तीन चार घंटे सो सका।

१७ अगस्त मङ्गलवार—गर्ब्याङ्ग की धर्मात्मा रूमा देवी ने मेरे लिए हरकारे के हाथ चावल और अन्य खाने का सामान भेजा था। उस देवी का मैं हृदय से धन्यवाद करता हूं। उस रसद से मुझे बड़ी सहायता मिली।

आज सवेरे गलागाड़ से चले, अच्छा मार्ग है, ऊंचे ऊंचे चढ़ते चले गये। मुझे चौन्दास पहुंचना था। गलागाड़ से चौंदास १२ मील है चढ़ाई, के बाद बढ़िया उतार है। सीटी बजाता हुआ, भजन गाता हुआ जारहा था।

> तुमही करतार हो दुखों से बचाने वाले।
> अपने भक्तों को सदा पार लघाने वाले॥
> भक्त प्रह्लाद को पर्वत से बचाया तैंने।
> कष्ट भूमि में सदा साथ निभाने वाले॥

आनन्द में मस्त आ रहा था। जहां प्यास लगती झरनों का ठण्डा स्वच्छ जल पी लेता। पर्वतेश्वर हिमालय के सुरम्य दृश्यों को देख देख मन मुदित हो रहा था। देवदारू उन्नत

मुख किये समधुर स्वर से सर सर नाद कर मेरे चित को आह्लादित करते थे। जंगलों की अनोखी छटा का मज़ा लेता हुआ आगे बढ़ा। सड़क कहीं कहीं घने वृक्षों से आच्छादित है; पादपों की शाखायें एक दूसरे के गले में बांह डाले प्रेम-पाश में बन्धी हैं। कहीं कहीं पत्तों पर से वर्षा के विन्दु टप टप गिर रहे थे।

चौन्दास

इस प्रकार ठण्डी सड़क की सैर का सुख भोगते हुये एक स्रोत के पास पहुंचे। यहां बैठकर सत्तू खाए और पेट पूजा कर फिर बढ़े। अब पहाड़ी ग्राम दृष्टि गोचर हुये। कृषक लोगों की आवाज़ भी सुनाई देने लगी, पहाड़ी सीढ़ियों जैसे खेत फिर दिखाई दिए। ग्राम में पहुंचे तो वहां कई विद्यार्थियों से भेंट हुई। यह ग्राम पर्वतस्थली में स्थित है; इसके चारों ओर अपूर्व दृश्य हैं; स्वर्गीया अमरीकन मिस शेल्डन का बंगला भी यहीं है। यहां कुछ देर सुस्ता लिया।

चौन्दास का इलाका भी बड़ा रमणीय है। जल वायु नीरोग, बन शोभा विशिष्ट, प्राकृतिक सौन्दर्य अनुपम और लावण्यमयी भू-श्री यहां विराज रही है। ९००० फीट की ऊंचाई पर के ये ग्रामसमूह इन दिनों सुन्दर विहारस्थल बन जाते है।

* * * * *

हिमाचल की इस रम्य पर्वत-स्थली तथा व्यास और दारिमा की पट्टिओं में जो भोटिए रहते हैं उनमें बड़ी बड़ी भद्दी रस्में प्रचलित हैं। जैसे पाश्चात्य देशों में स्त्रियों को स्वतन्त्रता है वैसे ही, बल्कि उससे भी अधिक स्वच्छन्दता

इधर की स्त्रियों को दी जाती है। इनके यहां 'रामवंग' की चाल है। प्रत्येक ग्राम में एक घर ऐसा बनाते हैं जहां युवक और युवतियां रात को स्वतन्त्रता से मिल सकें। इस घर को 'रामवंग' अथवा 'क्लबहौस' कहिए। रात के समय युवक लोग अपनी प्यारी युवतियों के साथ यहां इकट्ठे होकर शृङ्गाररस के गीत गाते हैं; मद्यपान करते हैं; धूम्रपान कर हृदय जलाते हैं। सारी रात यही धन्धा रहता है। जब मद्यका नशा खूब चढ़ जाता है तो यहीं क्लब हौस में सो रहते हैं।

छोटी छोटी लड़कियां,आठ दश वर्ष की अवस्था से ही, इस भोटिआ क्लबहौस में जाना आरम्भ करती हैं। माता पिता खुशी से अपनी सन्तान को इस नाश-गृह में भेजते हैं। जब किसी युवक को लड़कियों के प्रेमालाप की चाह होती है तो वह रात को अपने घर से निकल, किसी ऊंची चट्टान पर खड़ा हो अपने दोनों ओठों पर अंगुलियाँ रख सीटी बजाता है। उस सीटी को सुनते ही युवतियां अपने घरों से आग ले लेकर निकलती हैं और 'रामवंग' की ओर चल देती हैं। ग्राम के नवयुवक भी सीटी सुनते ही प्रसन्न हो उधर ही मुंह करते हैं। वहां लड़कियां और लड़के आमने सामने बैठजाते हैं; खूब नाच रंग होता है। यदि लड़कियों की इच्छा लड़कों के बुलाने की हो तो वे किसी चद्दर के सिरे को पकड़ कर हवा में हिलाती हैं, या सीटी देकर अपना अभिप्राय प्रगट करती हैं।

इस प्रथा का परिणाम बड़ा भयंकर है—जवानी की अवस्था, एकान्तस्थान, शराब की मस्ती, नाच रंग की हिलमिल, रात का समय-इन सब कारणों से भोटिआ समाज में पातिव्रत धर्म का ह्रास होगया है। आर्य सभ्यता का श्रेष्ठ, सर्वोत्तम-रत्न पातिव्रत धर्म है, भोटिए भाई इस बात को बिल-

कुल भूल गये हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि जिस आपत्काल में आर्य क्षत्रियों ने इन कठिन, दुर्गम पर्वतों में आकर शरण ली थी, उस समय यहां के एकान्त-यहां की निर्जनता-ने उनको बे तरह सताया होगा। समय काटनेके लिये उन्होंने कोई न कोई उपाय दिल बहलाने का किया होगा। परदा तो उनमें था ही नहीं इसलिये इस प्रकार की प्रथा का चल जाना आश्चर्य्य जनक नहीं है। सभ्यता के केन्द्र से दूर रह कर उन्होंने इसी तरीके से विवाह की समस्याको हल किया होगा किन्तु इस समय इस प्रथाको बहुत जल्द दूर करने की आवश्यकता है। इस प्रथा से जारज सन्तान, व्यभिचार, भ्रष्ट कुलाचार आदि दुर्गुणों की समाज में वृद्धि होती है। लड़के लड़कियां आपस में मिलें, वार्तालाप करें एक दूसरे के स्वभाव की पहचान करें और उनका विवाह बड़ी अवस्था में आपस की स्वीकृति से हो, यह सब अच्छा है, परन्तु युवक और युवतिओं को मद्यमान की खुली छुट्टी, एकान्त में रातें काटना, शृङ्गार रस के गीत, ये सब ब्रह्मचर्य्य की जड़ पर कुल्हाड़ा चलाने के सामान हैं। जहां तक हो सके इस प्रथा को शीघ्र दूर करना चाहिये। मैं अपने शिक्षित भोटिए भाइयों से नम्रता पूर्वक निवेदन करता हूं कि वे अपनी इस बुरी प्रथा का संशोधन कर अपनी समाज की रक्षा करें।

इधर के लोगों में एक और भी भौंड़ा रिवाज है जिसको ये लोग धुङ्ग कहते हैं। जब कोई आदमी या औरत मर जाती है तो उसके सम्बन्धी दाह कर्मादि से निश्चिन्त हो अपने ग्राम के बड़े बूढ़ो को बुलाकर धुङ्ग के विषय में परामर्श लेते हैं। धुङ्ग संस्कार के लिए एक तिथि निश्चित की जाती है। यदि मरनेवाला पुरुष हो तो उसी लिङ्ग का पशुभी धुङ्ग

के लिये चुना जाता है। भेड़, बकरी, याक इनमें से जो पशु उचित समझा जाए उसीको मृतप्राणी का प्रतिनिधि ठहराते हैं। बहुत से लोग जिनपर हिन्दू धर्म का प्रभाव पड़ा है याक (चंवर गाय) को इस कार्य्य के लिये काम में लाने के विरोधी हैं। वे भेड़ अथवा बकरी से वही मतलब निकालते हैं। निश्चित तिथि को मृतक के सम्बन्धी पशु को ग्राम से बाहर एक ख़ास जगह पर ले जाते हैं, वहां उसे अच्छे अच्छे वस्त्रों से सजाते हैं। तत्पश्चात पशु पर जौ फेंके जाते हैं और उसे मृतक का सच्चा प्रतिनिधि बना श्मशान भूमि में लेजाते हैं, साथही उसके सींगों में सफ़ेद कपड़ा बांध देते हैं।

तीसरे दिन मृतक की अस्थियां इकट्ठी करके उनको बड़े लम्बे जूतों में रख कर घर लाते हैं। कुछ कृत्य करने के बाद ग्राम के सब मनुष्य लम्बी कतारें बांध बांध कर नाचते हैं, और इस प्रकार भूतों की तरह नाचते हुये मृतक के घर पहुंचते हैं; वहां बड़ा जलसा होता है; खूब दावतें उड़ती हैं, खाना खाने के बाद बड़ा गुलगपाड़ा करते हुये सब लोग पीतल के बर्तनों को बजाकर नाचते हैं; लड़कियां मशालें ले कर चलती हैं।

आखिरी दिन पशु को कपड़ों से सजाकर ग्राम के बाहर ले जाते हैं। वहां सब लोग उस बेचारे निरपराध पशु को डांट कर दूर भगा देते हैं। जब पशु दूर ऊंचे पहाड़ों पर अदृश्य हो जाता है तो सब भुटिये गाते नाचते ग्राम को वापिस आते हैं और मूंडन तथा स्नानादि कर शुद्ध होते हैं। लम्बती हुणिये कपड़ों से लदे हुये उस पशु की ताक में रहते हैं जब भोटिये अपने ग्राम की ओर लौटते हैं तो वे उस अनाथ पशु को पकड़, काट कूट कर, खाजाते हैं।

यह इन भोटिओं की श्रृङ्खलाघ्नी पिशाचिनी प्रथा है। आश्चर्य्य है कि इन लोगों में यह जंगलीपन कहां से घुस आया। मालूम होता है यह तिब्बती संसर्ग का दोष है। मेरी कई एक पढ़े लिखे भोटिओं से इस विषय पर बातचीत हुई थी, वे सब इस प्रथा के कट्टर विरोधी हैं। मुझे पूर्ण आशाहै कि वे अपनी समाज में घोर आन्दोलन कर इस भोंडे संस्कार को दूर करेंगे और अपने बच्चों को प्राचीन सोलह संस्कारों की शिक्षा देंगे। अब रेल और तार का ज़माना है, डाकखाने खुले हुये हैं, अच्छी से अच्छी पुस्तकें पारसल द्वारा आसक्ती हैं, आवश्यकता है कि शुद्ध हिन्दू सभ्यता की पुस्तकों का प्रचार इन पर्वतों में किया जाये ताकि हमारे ये बिछुड़े हुये भारतीय बन्धु पुनः ऋषियों के बतलाये हुये मार्ग का अनुसरण कर सकें।

* * * * *

आज रात पटवारी महोदय के घर का आतिथ्य स्वीकार किया। यहीं रात कटी।

खेला

१८ अगस्त बुद्धवार—चौन्दास से चला। पौन मील तक उतार होगा इसके बाद थोड़ी चढ़ाई, फिर बेढ़ब उतार प्रारंभ होता है। खेतों को देखता हुआ चला। नीचे काली के गूंजने की की धीमी आवाज़ आरही है, और नदी सफेद सूत के तागे की तरह दिखाई देती है। मुझे इसी के किनारे पहुंचना है। सड़क स्थान स्थान पर टूटी हुई थी; वर्षा से जगह जगह नाले बह रहे थे, कई जगह पहाड़ टूट गया था, किसी प्रकार सम्भल सम्भलकर इस बेढ़ब सीधे उतार को पूरा किया।

चौन्दास से ५००० फीट नीचे आगये, धौलीगंगा यहां दारिमा से आकर काली में मिली है, इसका पुल पार कर फिर खेला की चढ़ाई चढ़ना शुरु किया। थोड़ी चढ़ाई चढ़ने के बाद ठहरने के स्थान पर पहुंचे। यहाँ बड़ा सुख मिला। भोजनोपरान्त थके हारे सोगये।

१६ अगस्त से २७ अगस्त तक—खेला पांच हज़ार फीट ऊंचा है। अच्छा बड़ाग्राम है। यहाँ पोस्टआफिस है। दारिमा और चौन्दास का यह नाका है। यहां से अस्कोट तीसमील होगा और अस्कोट से अल्मोड़ा सत्तर मील—मुझे अभी एक सो मील और जाना है। रास्ते में धारचूला, बलवाकोट, अस्कोट, थल, बेरीनाग आदि छः सात पड़ाव ठहरना है। अलमोड़ा से टिकटिकिओं की करतूतों की भयानक खबरें आरही हैं। कुछ प्रेमी अल्मोड़ा न आने की सलाह देते हैं; कुछ अन्तर्धान होने के लिये कहते हैं पर यहां तो बात ही दूसरी है —

न जायते म्रियते वा कदाचिन्
नायं भूत्वा भविता वा न भूयः।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो
न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥

जिसने इस अमृत का पान कर लिया है उसको कोई क्या डरा सकता है।

खेला से धारचूला दसमील होगा। काली के किनारे किनारे चल रहे हैं। काली भी विचित्र नदी है। इतनी बड़ी बड़ी पहाड़ी नदियां इसमें मिलती है पर यह डकार तक नहीं लेती; वैसी की वैसी बनी रहती है। भयंकर नदी है। एक स्थान पर पहाड़ी नदी का पुल नहीं था, वहां झूले द्वारा पार होना

पड़ा। बायें हाथ काली और दहिने हाथ पर्वत के साथ साथ जारहा हूं। सड़क अच्छी है, मगर आजकल वर्षा के कारण इसकी दशा बिगड़ गई थी, मजदूर लोग मरम्मत भी कर रहे थे।

धारचूला

शामको धारचूला पहुंच गए। यहां प्रेमी लोग आगे से ही बाट जोह रहे थ। अच्छा स्वागत किया; बंगले में ठहरे। चार पांच दिन बड़े आनन्द से कटे; काली में स्नान कर उसकी लहरों के थपेड़े खाये। धारचूला पांच चारसौ घरों की आबादी का अच्छा कसबा है। काली के उस पार नेपाल राज्य के अधिकारी रहते हैं। नदी के आर पार जाने आने के लिये रस्सियों का झूला है। दिन भर लोग आते जाते हैं। व्यास चौन्दास के भोटिये शीतकाल में यहीं रहते हैं इस लिये उनके मकान आज कल खाली पड़े थे। यहां दो तीन उपदेश हुये; लोगों ने बड़ी श्रद्धा से राष्ट्रीय सन्देश को सुना; शिक्षा की महत्ता उनको भली प्रकार मालूम हुई। पण्डित लोकमणि जी तथा पण्डित प्रेमवल्लभ जी बड़े श्रद्धालु सज्जन हैं। आप दोनों ने मुझ थके हारे को आराम देने का यथोचित प्रबन्ध किया।

धारचूला से बलवाकोट दस मील है। यहाँ मध्याह्न समय में पहुंचे। आज रक्षा बन्धन था। इस लिये असकोट के धर्मात्मा क्षत्रीपुत्र श्रीमान खड्गसिंह जी काली नदी के तीर पर विप्रवरों के साथ ऋषि तर्पण कर रहे थे। इनके अनुरोध पर आज मैं यहीं ठहर गया। यहां पता लगा कि एक शेर बलवाकोट के आस पास जंगल में है, कई आदमियों को उसने खा लिया था। उसके डरके मारे ग्रामीण लोग अपने गांव से

दूर घास काटने नहीं जाते थे। सब कोई उससे परेशान थे। श्रीखडगसिंह जी उसी के मारने के लिये यहां ठहरे हुये थे- पर वह नटखट पशु इनके हाथ नहीं आता था। जहां उसने आदमी खाया फौरन काली नदी पार कर नैपाल के जंगलों में घुस जाता था और जब उधर उसके पकड़ने के सामान होते तो नदी पार कर इधर बलवाकोट की तरफ आजाता था। काली नदी ऐसी भयंकर है कि तैर कर उसको पार करना मनुष्य के लिये महा कठिन है, लेकिन वह हिंसक पशु इसको कुछ भी नहीं समझता था। गाओं वाले बेचारे शस्त्र हीन उसके डर के मारे रात को सो भी नहीं सकते थे। बलवाकोट बड़ी गरम जगह है। यहां केवल एक रात बड़ी कठिनाई से रहा दूसरे दिन सवेरे असकोट की ओर चले।

असकोट

असकोट यहां से बारह मील है। रास्ते में सुन्दर दृश्य खिल-खिलाती हुई धूप का आनन्द तथा काली के सहायक जल प्रपातों कानाद सुनते हुये बारह बजे के क़रीब गोरी नदी के पुलके पास पहुंचे। गोरी (जोहार) मनस्यारी की ओर से आकर अस-कोट के नीचे कुछ दूर जाकर काली से मिल गई है। यहां से इसके किनारे किनारे जोहार को रास्ता जाता है। जो यात्री तनकपुर के मार्ग से शोर होकर असकोट से जोहार के रास्ते कैलाश दर्शन करना चाहते हैं वे इसी मार्गसे मनस्यारी पहुंच सकते हैं। यहां गोरी के तटपर स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो अस्कोट पर्वत पर चढ़े। दो तीन मील की विकट चढ़ाई चढ़ने के बाद नीरोग शीतल जल वायु में आगए। हिमाचल के नैस-र्गिक दृश्य फिर दिखाई दिये। इर्द गिर्द ऊंची पहाड़ियां मेघों

से खेल रही थीं। यहां के रजवार महोदय ने प्रेम पूर्वक मुझे ठहराया। श्रीमान जगतसिंहजी महाशय का मैं बड़ा धन्यवाद करता हूं जिन से मुझे बहुत कुछ बातें तिब्बत के विषय में अधिक मालूम हुईं। आप एक अंगरेज़ अधिकारी के साथ तिब्बत भ्रमण के लिये गए थे, और जो कुछ उस अंगरेज़ को तिब्बत सम्बन्धी ज्ञान प्राप्त हुआ वह आप ही के दुभाषिया होने की बदौलत था। आप हिन्दी के परम भक्त और बड़े साधु स्वभाव के हैं। यहां दो तीन दिन आराम किया; वर्षा की बहार देखी।

असकोट तकलाकोट से नब्बे मील है, और अलमोड़ा से सत्तर मील; तनकपुर रेलवे स्टेशन यहां से ८० मील पर होगा। असकोट पहले बड़ी रियासत थी और इसकी प्रभुता नैपाल से काबुल तक फैली हुई थी। समय के हेर फेर ने हिमाचल के इस उच्चस्थल परभी अपना प्रभाव डाला और अब यह छोटे से ताल्लुके के बराबर है। यहां के क्षत्रियों का सम्बन्ध नैपाल के क्षत्रियों के साथ होता है। रंग रूप में मंगोलियन पन के चिन्ह इनमें नहीं हैं। बहुत ही अच्छा हो यदि राजपूताना तथा अन्य प्रान्तों के राजपुत्रों के विवाह सम्बन्ध इस ओर होने लग जायें ताकि परस्पर की विभिन्नता दूर होकर एकता के सूत्र की वृद्धि हो।

२८ अगस्त से दोसितम्बर तक–आज शनिवार था। असकोट से चलने की तय्यारी कर ली। यद्यपि टिकटिकिओं* की धूर्तता से विचित्र जाल बिछाया गया था पर यहां तो—

*यदि कभी समय मिला तो छोटी कथा के रूप में इस अन्याय पूर्ण, धूर्तता रञ्जित विचित्र घटना को पाठकों की भेंट करूंगा --

लेखक।

जिन्हां रक्खे साइयां मार न सके कोय।
बाल न बांका कर सके जो जग बैरी होय॥

वाली बात है; निश्शङ्क निर्द्वन्द हो अल्मोड़ा की ओर प्रस्थान किया। यहां से अल्मोड़ा की तरफ़ सुन्दर सड़क गई है। कुली असबाब उठाये ले जा रहा था। इधर के मज़दूर बोझा उठाने में गज़ब करते हैं, दो दो मन बोझ पीठ पर लाद ऊंची ऊंची चढ़ाई चढ़ जाते हैं। इस सड़क पर जगह जगह जंगलों से वर्षा का पानी आ रहा था। अस्कोट से सात मील पर चौरस भूमि में डीडीहाट है, यहां एक पाठशाला है, दो तीन दुकानें हैं। यहां मैं नहीं ठहरा; तेज़ी से बढ़ा चला गया। मुझे आज थल पहुंचना था।

थल

यह ग्राम रामगङ्गा के किनारे बसा है। साल में एक बार संक्रान्ति के मौक़े पर यहां भी मेला भरता है और छः दिन तक रहता है। जैसे बागेश्वर के मेले में भोटिये लोग माल बेचते हैं ऐसे ही यहां भी ये लोग तिब्बती घोड़े, चंवर, चुटके, थुल्मे, पंखियाँ, नमक, सुहागा आदि बेचते हैं। अल्मोड़े से कपड़ा, बर्तन, तम्बाकू, मिश्री आदि चीज़ें यहां बिकने आती हैं। यहां एक पाठशाला और छोटा डाकखाना भी है। थल डीडीहाट से दस मील पर होगा; रास्ते में तीन मील का उतार पड़ता है।

मध्यान्ह के बाद तीन बजे थल पहुंचे। यहां भी भोटिए लोगों ने बड़े आदर सत्कार से ठहराया। पहाड़ी लोग सुस्त हैं मगर भोटिये बड़े होशियार हैं। ब्राह्मण, क्षत्री भूखे कठिनाई से दिन बितारहे हैं लेकिन ये लोग व्यापार कर आनन्द

से जीवन काटते हैं। यह सब उद्योग की बात है। उच्चवर्णों के लोग नौकरी के फेर में पड़े हैं, वे नौकरी के सिवाय दूसरा धन्धा नहीं जानते, परिणाम यह है कि उनकी दशा बड़ी हीन है।

* * * * *

रामगङ्गा के यहां फिर दर्शन हुये। तेजम में इससे बातें की थीं, उस समय इसका जल स्वच्छ था, आजकल इसका पेट बढ़ गया है, रंग बदला हुआ है; सरयु जी से भेंट करने को बड़ी शीघ्रता से जा रही है।

रात को यहीं ठहरे। चलने की जल्दी थी इसलिये उपदेश आदि का प्रबन्ध नहीं किया, इच्छा शीघ्र अल्मोड़ा पहुंचने की थी। दूसरे दिन सवेरे चल पड़ा। तीन मील बराबर मैदान चला गया है। जंगल की शोभा अनुपम है। आगे अच्छी मज़ेदार चढ़ाई है, ठण्डी सड़क है, कुछ दिक्कत मालूम नहीं होती। रास्ते में एक नाले के पास स्नान ध्यान से निश्चिन्त हो गया। दस बजे सवेरे बेरीनाग पहुंचा, यहां डाकखाने में मेरी डाक जमा थी, इस लिये यहां पाँच चार घंटे व्यतीत किये।

बेरीनाग

बेरीनाग अल्मोडा से ब्यालीस मील पूर्व की ओर है। इसकी ऊंचाई छः हज़ार फीट से कुछ अधिक ही होगी। यहां चाय के बड़े बड़े बग़ीचे हैं और इस जगह से हज़ारों रुपये की चाय हरसाल बाहर जाती है, ख़ासा व्योपार होता है। यहां पोस्टआफिस, डाक बंगला, पाठशाला, गिरजाघर सभी

कुछ है; मान्टरस का यहां ज़ोर है और वे ही अधिकांश चाय के बग़ीचों के स्वामी हैं।

मुझे यहाँ अधिक नहीं ठहरना था। राय बहादुर कृष्ण-सिंह जी यहां से छः सात मील पर झलतोला में रहते हैं, मुझे उन्हीं के पास जाना था। मध्यान्ह बाद उनका आदमी घोड़ा लेकर आया। शाम को झलतोला पहुंचे। यह भी रमणीक स्थान है; जल वायु नीरोग और दृश्य मनोहर हैं; पंचाचूली की चोटियां यहां से स्पष्ट दिखाई देती हैं और जब उन पर सूर्य्य की किरणें पड़ती हैं तो अजब बहार होती है।

मैं यहां दो सेपटेम्बर तक रहा; यात्रा की थकान को दूर किया। रायबहादुर कृष्णसिंह जी बड़े देशहितैषी सज्जन हैं। आप अपनी शक्ति अनुसार देशहितकार्यों में योग देने में सदा तत्पर रहते हैं। यद्यपि आप वृद्ध हैं पर उत्साह आपका युवकों जैसा है। आप पूर्वी पश्चिमी तिब्बत में कई वर्षों तक घूमे हैं और अत्यन्त कष्ट सहन कर वहां के नक़शे तय्यार किए हैं। तिब्बत-अन्वेषण में आप—" A. K. Pandit ए० के० पण्डित " के नाम से प्रसिद्ध हैं। आप से तिब्बत सम्बन्धी वार्तालाप कर चित्त बड़ा प्रसन्न हुआ। तिब्बत सम्बन्धी जितना ज्ञान आपको है शिक्षित संसार में उतना दूसरों को कम होगा। दुख है कि आपकी वाक़फियत से हिन्दी संसार को कुछ लाभ नहीं पहुंचा। यदि आप अपने तिब्बत-अन्वेषण की यात्रा पर कोई ग्रन्थ लिखें तो वह अपने ढङ्ग की अद्वितीय पुस्तक ही हो।

यात्रा का अन्त

३ सेपटेम्बर शुक्रवार—झलतोला से अल्मोड़ा ३६ मील

होगा। बड़ी सुन्दर सड़क बेरीनाग से अल्मोड़ा तक गई है। जैसे कोई सैलानी आदमी ठण्डी सड़क की सैर करने जाता है, ठीक ऐसा ही रास्ता है। आनन्द से घोड़े पर सवार शीतल वायु की अठखेलियां देखता हुआ चला गया। रायबहादुर साहब ने घोड़े का प्रबन्ध करदिया था इसलिए पैदल चलना नहीं पड़ा। आज कल यह मार्ग विचरने योग्य होता है। धोए धाए वृक्ष, हरियाली से लदी हुई पहाड़ियां, स्थान स्थान पर जल की कलकल ध्वनि, पशुपक्षी सब प्रसन्न, वर्षा का अन्त—सचमुच मनुष्य को खुशी के मारे नशा सा चढ़ जाता है। भला मैदान के रहने वाले इस सुख को क्या जानें। लू में मरने वाले, धूल फांकनेवाले, पसीने की बदबू में बसनेवाले इस मज़े को अनुभव नहीं कर सकते। यह मज़ा सचमुच सब से निराला है।

सड़क पर जाता हुआ यही सोचरहा था—"ईश्वर ने अपने प्यारे भारतिओं को क्या ही सुन्दर सुहावना देश दिया है। उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम चारों ओर रमणीक के पर्वत-मालायें हैं क्या हम उनसे लाभ उठाते हैं? बिल्कुल नहीं। गरमियों में झुण्ड के झुण्ड यात्रियों को इधर आना चाहिए; इधर की नैसर्गिक छटा का सुख भोगना चाहिए। इन पर्वतों पर अच्छी अच्छी पाठशालाओं की आवश्यकता है; यहां बड़े बड़े कालिज खुलने उचित हैं। अमरीका और यूरुप में प्राकृतिक शोभा विशिष्ट पर्वत-स्थलिओं में कैसे कैसे विश्व-विद्यालय खुले हुए हैं; वहां के विद्यार्थी कैसे बलिष्ठ होते हैं। क्या हमारे यहाँ वैसे स्थानों की कमी है? नहीं, फिर क्यों हमारे लीडर उनका सदुपयोग नहीं करते? हा! इस प्रश्न का उत्तर लिखते हुए छाती फटने लगती है। जिन सुरम्य स्थानों

पर कालेज, विश्वविद्यालय, गुरुकुल, ऋषिकुल आदि बनने चाहियें वहां भैंसे और बकरे कटते हैं।

भारत सन्तान ! अपने देश के पर्वतों का सदुपयोग करना सीखिए। ग्रीष्म ऋतु में अपने आसपास के पहाड़ों पर जाकर वहां की प्राकृतिक शोभा देखिए; प्रकृति माता से बातें करने का अभ्यास कीजिए। अपने देश के पर्वतों को छान डालिए; उनकी वन्यता का उपयोग जानिए। यदि आप सामर्थ्य-वान हैं तो पर्वतों में अपना ग्रीष्म-गृह बनवाइए और इर्द गिर्द की भूमि में निर्धन विद्यार्थियों के रहने लायक़ मकान बनवा दीजिए ताकि मैदान के विद्यार्थी छुट्टियों में आकर वहां रह सकें। अपनी सुस्ती निकालने के लिए हमें पहाड़ों में विचरने की आवश्यकता है; हमें अब पहाड़ों को अपनाने की ज़रूरत है।

परन्तु एक बातका ध्यान रखना होगा। अबतक तो मैदान-वालों की बुराइयां ही पहाड़ों में पहुंची हैं; अबतक अधि-कांश कामान्ध धनी, राजे, नव्वाब पहाड़ों में व्यभिचार फैलाने के लिए ही जाते हैं, अबोध पहाड़ी कन्यायें उनके अत्याचारों से अत्यन्त दुखी हैं; वे धन के लिए बेची जाती हैं। हमारा उद्देश्य पर्वतों में शिक्षा प्रचार आरोग्यता लाभ और प्राकृतिक दृश्यों की मनोहारिणी छवि देखना होना चाहिए। हमें पर्वतों में विद्या-केन्द्र बनाने उचित हैं। जो लोग केवल यात्रा के विचार से—मन्दिरों को हाथ लगाने के लिए-गिरि कन्दराओं में घूमते हैं उनको कुछ यथेष्ट लाभ नहीं होता। अपने पूज्य मन्दिरों के दर्शन कीजिए. किन्तु साथही आंख, कान खोलकर प्राकृतिक सुन्दरता भी अनुभव करते जाइए; खाली धक्के खानेसे कुछ लाभ नहीं होता।

अल्मोड़ा

चार सितम्बर को धौलछीना से सवेरे ही चलकर ग्यारह बजे के क़रीब अल्मोड़े पहुंच गया। १९ जून को मैं यहां से श्री कैलाश दर्शन के लिये निकला था, अढाई महीने से कुछ अधिक दिन मुझे इस विकट यात्रा में लग गये।

यहां अल्मोड़े में मेरे विषय में तरह तरह की चर्चा फैली हुई थी। कोई कहता था—"सत्यदेव के नाम का वारन्ट निकला हुआ है और पुलीस उनको पकड़ने के लिये असकोट गई हुई है"। किसी ने उड़ाया—"सत्यदेव तिब्बत भाग गये और अब जरमनी जारहे हैं"। बड़े बड़े पढ़े लिखों में ऐसी ही बातें फैल रही थीं। जो प्रेमी मिलने आते वे यही कहते—"हमने सुना था कि आप के नाम का वारन्ट निकला हुआ है।" डाक जो मिली थी उस में भी विचित्र चिट्ठियां नीचे मैदान से आई थीं। कई सज्जनों ने विहार प्रान्त से पत्र भेजे—"हमने सुना है आपके व्याख्यान एक वर्ष के लिये बन्द कर दिये गये हैं।" कहां तक लिखूं। मैंने जो एक वर्ष के लिये, व्याख्यान बन्द कर देने का नोटिस निकाला था, उसके धूर्त लोगों ने तरह तरह के अर्थ लगाये और मुझे बदनाम करने के लिये घृणित से घृणित बातें फैलाई गईं। भारतवर्ष की जनता मूर्ख है, वह गप्पों पर झट विश्वास कर लेती है। उसमें सोचने की बुद्धि नहीं। जिस साहित्य सम्बन्धी कार्य तथा मानसिक शक्ति उपार्जन के निमित्त मैंने एक वर्ष तक एकान्त सेवन का विचार किया था लाचार होकर मुझे कुछ काल के लिए उस विचार को स्थगित कर देना पड़ा। इस अभागे देश की ऐसी दुर्दशा है कि यहां मार्ग में कांटे बोनेवाले

अधिक हैं मगर कार्य में हाथ बटाने वाले नही हैं। कई भले-मानसों का तो झूठी बातें उड़ाना पेशा ही है।

पाठक महोदय ! साधन रहित, फोटोग्राफर के बिना, योरपीय महाभारत के समय में मैंने श्री कैलाश जी की यात्रा की है। जो कुछ वर्णन, जो कुछ यात्रा का ब्योरा, मैंने दिया है वह आधुनिक 'सचित्र-युग' की परिभाषा के अनुसार तो है नहीं, मगर मुझे पूरा विश्वास है कि मेरी यह पुस्तक बहुत से सज्जनों को श्री कैलाश दर्शन के लिये प्रेरित करेगी। मुझे आशा है कि कोई योग्य हिन्दीहितैषी महाशय साधन सम्पन्न हो कर, तिब्बत जायेंगे और वहां का सचित्र वर्णन हिन्दी संसार की भेंट करेंगे।

कैलाश दर्शन तथा मानसरोवर स्नानकर मैंने अपने जीवन की एक बड़ी इच्छा को पूर्ण किया है। जो कुछ मुझे वहां आनन्द मिला है, मैंने हिन्दी संसार को उसका भागी बनाने का यत्न किया है। यह पुस्तक केवल मेरे हृदय के उद्गार हैं। मैंने किसी योरपीय वैज्ञानिक की तरह, अथवा अल्मोड़ा के किसी राजकर्मचारी की तरह बीस बीस मनुष्यों का बोझा लादकर तिब्बत की यात्रा नहीं की थी, मैं केवल एक कठिन व्रतपालनार्थ वहां गया था। आज कल जब कि भारत के सब दरवाज़े बन्द हैं और बिना पासपोर्ट के कोई बाहिर जा नहीं सकता, मेरे जैसे पुरुष का साधनसम्पन्न हो कर तिब्बत जाना हो नहीं सकता था। अतएव सहृदय पाठक ! यदि इस छोटी सी पुस्तक से कुछ भी आनन्द आपने अनुभव किया है, यदि भारत द्वारपाल हिमालय के दर्शनों की उत्कण्ठा आपके मन में जागृत हो उठी है, यदि कमाऊं की भू-श्री की लावण्यता देखने की लालसा आप में उत्पन्न हो गई है तो मैं

समझूंगा कि मेरा उद्योग सफल हो गया।

मैं चाहता हूं कि मेरे देश के बच्चे योरपीय वैज्ञानिकों की तरह हिमाचल का अन्वेषण करें; मेरी इच्छा है कि मेरे देशवासी अपने देश के पर्वतों की उपयोगिता को समझें; मेरी हार्दिक अभिलाषा है कि भारत का शिक्षित समुदाय भारत के पड़ोसिओं से परिचय प्राप्त करे। श्रीकैलाश जी की यात्रा करने से मुझे दृढ़ विश्वास हो गया है कि भारत की भावी उन्नति के साधनों का असली रहस्य हमारे पर्वतों में छिपा हुआ है, और भारतोत्थान की अभिलाषा को प्रत्यक्ष करने के लिये हमें पूज्य हिमाचल की शरण लेनी पड़ेगी।

परमात्मन्! क्या मेरे देशबन्धु मेरी आवाज़ को सुनेंगे?

नम्र-निवेदन

आज सवा दो वर्षों के बाद सत्य-ग्रन्थ माला की आठवीं संख्या प्रकाशित करता हूं। मुझे दुःख है, अत्यन्त दुःख है कि मैंने हिन्दी साहित्य के प्रति अपना कर्तव्य पालन नहीं किया। नए वर्ष १९७३ विक्रमी में मैं अपने इस पाप का प्रायश्चित्त करूंगा. और यदि योरोपीय महायुद्ध के कारण कोई कठिन बाधा पुस्तक प्रकाशन में न हुई तो अवश्य ही उत्तम उत्तम पुस्तकें लिखकर अपनी पूज्या हिन्दी महाराणी के चरणों में धरूंगा। मैंने अपनी पहली पुस्तकों का स्वत्व हिन्दी साहित्य-रत्नाकर, मुज़फ्फ़रपुर वालों से फिर खरीद लिया है, अब सत्य-ग्रन्थ माला की कुल पुस्तकों के कापी-राइट पर मेरा अधिकार है, इसलिए उन पुस्तकों के जो नवीन संस्करण निकलेंगे उनका दाम यथासम्भव कम किया जाएगा। 'अमरीका-दिग्दर्शन' और 'आश्चर्यजनक-घंटी' के प्रथम संस्करण कई महीनों से खतम होचुके हैं; 'अमरीका भ्रमण' प्रथम भाग की केवल एक सौ प्रति स्टाक में हैं; ये तीनों पुस्तकें शीघ्र छपनी चाहियें, परन्तु बाज़ार में कागज़ नहीं मिलता, ऐसी दशा में पुस्तक प्रकाशक बेचारा लाचार है। जैसे जैसे कागज़ मिलने में सुभीता होता जायगा, वैसेही मैं अपनी पहली पुस्तकों के नए शुद्ध संस्करण छपवाता जाऊंगा। जब तक कागज़ का अभाव है पहली पुस्तकों के नए संस्करण छप नहीं सकते, अतएव ग्राहक महाशय उन पुस्तकों के लिए बारबार पत्र न भेजें।

"कैलाश-यात्रा" के बाद "संजीवनी-बूटी" का नम्बर है

और उसके बाद 'अमरीका भ्रमण' द्वितीय भाग छपेगा। 'सञ्जीवनी बूटी' तो मैं प्रेस में दे चुका हूं इसलिए उसको तो पूरा करना ही पड़ेगा, लेकिन 'भ्रमण' के द्वितीय भाग के लिए कागज़ कहां से आएगा। यदि किसी प्रकार मुझे कागज़ मिलगया तो 'भ्रमण' को पूरा किए बिना मैं पहाड़ पर नहीं जाऊंगा; यदि कागज़ न मिला तो मैं विवश हूं।

'कैलाश-यात्रा' का दाम अधिक है, पाठक, इसके लिए मैं निर्दोष हूं। योरुपीय महायुद्ध के कारण सब चीज़ें महंगी हैं। मैं इस पुस्तक की पृष्ठ संख्या बढ़ा देता यदि मेरे पास कागज़ का अभाव न होता, कागज़ की कमी के कारण पुस्तक को भी छोटा कर देना पड़ा। सन्तोष रखिए, कभी न कभी यह कमी पूरी करदी जायगी। आप कृपया इस समय पुस्तकों का प्रचार कर मेरा हाथ बटाइए। सामग्री के सुलभ होते ही मैं उत्तम और सस्ती पुस्तकें आपकी भेंट करूंगा।

'सत्य-ग्रन्थ-माला' का आफिस हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन कार्य्यालय के साथ सटा हुआ है, प्रयाग के ग्राहक महाशय जान्सेनगञ्ज में सम्मेलन कार्यालय से इसका पता दरियाफ़्त कर सकते हैं।

विनीत—

सत्यदेव परिव्राजक।

शिक्षा का आदर्श

मूल्य पांच आने　　　　　　और　　　　　　मूल्य पांच आने

लेखन-कला

स्वामी सत्यदेव जी के प्रसिद्ध व्याख्यान जो उन्होंने कलकत्ता, प्रयाग, लखनऊ मुजफ़्फ़रपुर, दरभंगा, हैदराबाद, (सिन्ध) आदि बड़े बड़े नगरों में सहस्रों मनुष्यों की स्थिति में दिये थे।

विषय—शिक्षा के आदर्श की भूमिका—विषय योजना—शिक्षा की व्याख्या—शारीरिक स्वतन्त्रता—आर्थिक स्वतन्त्रता—मानसिक स्वतन्त्रता—आत्मिक स्वतन्त्रता।

सम्मतियां

मैंने पुस्तक साद्यन्त पढ़ी, पुस्तक बहुत ही उत्तम तथा लाभकारी है।

—पं० गणेशबिहारी मिश्र

आपकी पुस्तक 'शिक्षा का आदर्श' तथा लेखन-कला' मुझे दौरे पर प्राप्त हुई। दो दिन के अन्दर साद्यन्त पढ़ा तो पुस्तक बड़ी ही उपयोगी समझ पड़ी। वास्तव में पुरानी लकीर के फकीरों के नेत्र खोलने के लिए आजकल भारत को ऐसी ही पुस्तकों की आवश्यकता है। बंगला में तो ऐसे उच्च एवं उदार विचारपूर्ण बहुत से ग्रन्थ हैं किन्तु, हिन्दी में उनका एकदम अभाव सा है। आप ऐसे ग्रन्थ लिखकर हमारी भाषा का बड़ाभारी उपकार कर रहे हैं—

—पं० शुकदेवबिहारी मिश्र बी० ए०

आपने 'शिक्षा का आदर्श' लिखकर इस डूबते हुए भारत का असीम उपकार किया है। इस छोटीसी पुस्तकको बारबर देखनेसे भी तृप्ति नहीं होती। यदि नित्यकर्म में सम्मिलित कर यह पुस्तक सर्वदा पाठ की जावे तो कद-

चित ही आपके उपकार का कुछ अंश सफल हुआ कहा जा सकता है…… इस पुस्तक के प्रत्येक अक्षर सर्वदा मनन करने योग्य हैं। एकाग्रवृत्ति से इसके पदोंपर दृष्टि फेरी जाय तो इसके प्रत्येक अक्षरांश में विद्युत प्रवाह होते हुए प्रतीत होता है और एक वार मृतशरीर में भी जीवन संचार हो उठता है। भारत के प्रत्येक वंश में माता पिता को उचित है कि इस पुस्तक के पाठ अपने बालकों को अवश्य कण्ठस्थ करादें और आर्यावर्त्त की प्रत्येक भाषा में इसका सुस्वरुप दे उसे हिन्दीलिपि में पाठ्य पुस्तक बनावें –

—पं० ताराचन्ददुबे

इस पुस्तक का घर २ प्रचार कर पुण्य सञ्चय कीजिये ।

सत्य-निबन्धावली

स्कूल और पाठशालाओं में पढ़ाने योग्य पुस्तक है। उपदेशप्रद छोटे छोटे निबन्ध हैं।

विषय सूचि—निवेदन-सन्देशा-हिम्मत करो-नन्दादेवी के दर्शन—लन्दन हाइड़ पार्क के सायंकालिक दृश्य—शासन सम्बन्धी वार्तालाप—प्राणी मात्र से मनुष्य की सगोत्रता—सिकन्द क्लास का साहेब—मुक्ति की प्राप्ति और आर्थिक स्वतन्त्रता—बेकारी—जापान नरेश मत्सूहीटो-एक सत्य सिद्धान्त—वीरबालक—भावी विप्लव—राजनीति विज्ञान—चोर विद्यार्थी—विश्वास घातकता का घोर दण्ड—जीवन क्या है—बोस्टन से मानचेस्टर—देशद्रोही अरनल्ड—सूद खोर काबुली—गोमाता ।

सम्मतियां

Satya-nibandhavali.—This is the seventh number of series of very useful books written and published by that well-known Hindi writer Mr. Satya-Deva. The book before us contains twenty-five essays which in a very simple language and manner bring home to the mind some of the most important

d most useful truths of political, social and economic ences, a knowledge of which is essential to the rogress of our country.

—LEADER, *Allahabad.*

उपरोक्त सम्मति प्रयाग के प्रसिद्ध अंग्रेजी दैनिक समाचार पत्र 'लीडर' की है।

In this publication 25 short essays of Mr. Satya Deva on various social subjects have been published ....the author's *nivedan* in the begining in which he gives his views about the cultivation of the Hindi Literature should commend itself to all. His discourses are as a rule very interesting and he has the merit of making even dry-as-dust subjects read with pleasure............. .

—MODERN REVIEW, *Calcutta.*

यह सम्मति भारत की प्रसिद्ध अंग्रेजी पत्रिका 'माडर्न रिव्यू' की है। पुस्तक का दाम आठ आने।

अमरीकन-यात्री

स्वामी सत्यदेव जी

के शिक्षाप्रद और उपयोगी ग्रंथों की नामावली

१—अमरीका-पथ-प्रदर्शक—

(द्वितीयावृत्ति) चार हजार छप चुका है। दाम ।=) आने।

२—आश्चर्यजनक घंटी—

कई महीनों से स्टाक में नहीं है। शीघ्र छपेगी।

३—अमरीका-दिग्दर्शन—

कई महीनों से खतम है। फिर छपेगा।

४—अमरीका के विद्यार्थी—

(द्वितीयावृत्ति) चार हज़ार छपा हैं। दाम ।)

५—मनुष्य के अधिकार—

(द्वितीयावृत्ति) छः हजार छप चुका है। दाम ।≈) आने

६—राजर्षि भीष्म—

दाम ।) आने

७—अमरीका भ्रमण—

(प्रथम भाग) स्टाक में कम है दुबारा छपेगा।

८—जातीय शिक्षा—

(द्वितीयावृत्ति) छः हजार छप चुकी है। दाम ≈) आना

९—सत्य-निबन्धावली—

तीन हज़ार छप चुकी है। दाम ॥) आने।

१०—राष्ट्रीय संध्या—

(द्वितीयावृत्ति) १२ हजार छप चुकी है। दाम)॥ पैसे।

११—हिन्दी का सन्देश—

(तृतीयावृत्ति) नौ हज़ार छप चुकी है। दाम ≈) आना।

१२—मेरी कैलाश-यात्रा—

चार हज़ार छपा है। दाम ॥)

१३—शिक्षा का आदर्श—

बीस रोज़ में छः सौ कापी बिकी है। दाम ।≈) आने।

१४—संजीवनी-बूटी (छप रही है)

१५—अमरीका भ्रमण—

(द्वितीय भाग) मई, जून तक छप सकेगा।

विनीत—

मैनेजर, सत्य-ग्रन्थ-माला, जान्सेनगञ्ज

प्रयाग